

खंड II

सैन्य एवं प्रशासनिक व्यवस्थाएँ

THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

समय रेखा

सैन्य संगठन

इक्ता

मनसब

जागीर



रोहतासगढ़ किले का प्रवेश द्वार

फोटोग्राफ एवं साभार: मरियोश, 2012

स्रोत: https://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/8/81/Rohtasgarh_Fort_Entrance.jpg

इकाई 7 प्रशासनिक संरचना*

इकाई की रूपरेखा

- 7.0 उद्देश्य
- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 दिल्ली सल्तनत और खिलाफत
- 7.3 दिल्ली सल्तनत के अधीन प्रशासन की प्रकृति
- 7.4 दिल्ली सल्तनत के अधीन केंद्रीय प्रशासन
 - 7.4.1 सुल्तान
 - 7.4.2 विज़ारत (वित्त)
 - 7.4.3 दीवान-ए अर्ज
 - 7.4.4 अन्य विभाग
 - 7.4.5 दास और कारखाने
- 7.5 दिल्ली सल्तनत के अधीन प्रांतीय और स्थानीय प्रशासन
- 7.6 शेरशाह के अधीन प्रशासन
- 7.7 मुगलों के अधीन केंद्रीय प्रशासन
 - 7.7.1 सम्राट
 - 7.7.2 वकील और वजीर
 - 7.7.3 दीवान-ए कुल
 - 7.7.4 मीर बख्शी
 - 7.7.5 मीर सामां
 - 7.7.6 सद्र-उस सुदूर
- 7.8 मुगलों के अधीन प्रांतीय प्रशासन
 - 7.8.1 प्रांतीय गवर्नर
 - 7.8.2 दीवान
 - 7.8.3 बख्शी
 - 7.8.4 दरोगा-ए डाक और गुप्तचर सेवा
- 7.9 मुगलों के अधीन स्थानीय प्रशासन
 - 7.9.1 सरकार
 - 7.9.2 परगना प्रशासन
 - 7.9.3 थाना एवं थानादार
- 7.10 नगर, किला और बंदरगाह प्रशासन
 - 7.10.1 कोतवाल
 - 7.10.2 किलेदार
 - 7.10.3 बंदरगाह प्रशासन
- 7.11 मुगल शासन की प्रकृति
- 7.12 सारांश
- 7.13 शब्दावली

*डॉ. किरण दत्तार, जानकी देवी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली और डॉ. राजीव शर्मा, सेंटर ऑफ एडवांस्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़। यह इकाई हमारे पाठ्यक्रम ई एच आई-03: भारत: 8वीं सदी से 15वीं सदी तक, खंड 5, इकाई 16; और ई एच आई-04: भारत: 16वीं सदी से 18वीं सदी के मध्य तक, खंड 4, इकाई 14 से ली गई है।

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप:

- दिल्ली सल्तनत के खलीफा के साथ संपर्क को समझ सकेंगे,
- दिल्ली सल्तनत के अधीन राज्य की प्रशासनिक प्रकृति के बारे में जान सकेंगे,
- दिल्ली सल्तनत के अधीन केंद्रीय और प्रांतीय स्तर के विभिन्न विभागों की सूची बना सकेंगे और उसकी कार्यप्रणाली को समझ सकेंगे,
- मुगल प्रशासनिक ढांचे के विकास की प्रक्रिया समझ सकेंगे,
- मुगल प्रशासन में मुख्य प्रांतीय पदाधिकारियों, उनके कर्तव्यों और दायित्वों पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- स्थानीय स्तर पर प्रमुख प्रशासनिक विभागों और उनके केन्द्र के साथ संबंधों का उल्लेख कर सकेंगे,
- नगर, किला और बंदरगाह प्रशासन की कुछ आधारभूत विशेषताओं को जान सकेंगे, और
- दोनों साम्राज्यों — दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य — के अधीन किस प्रकार विभिन्न अधिकारियों द्वारा नियंत्रण रखा जाता था, इसका मूल्यांकन कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

अपने **इकाई 2** में पढ़ा कि कुतबुद्दीन ऐबक ने किस प्रकार 1206 में दिल्ली सल्तनत की आधारशिला रखी और मध्य एशिया से संबंध विच्छेद की प्रक्रिया आरंभ हुई। हम आपको दिल्ली सल्तनत की सीमाओं के विस्तार के विषय में भी बता चुके हैं। 13वीं शताब्दी की प्रारंभिक तुर्की विजयों ने अनेक छोटे स्थानीय राजाओं का अंत कर दिया। अपने राज्य के सुदृढ़ीकरण के लिए तुर्की शासकों ने अपने *अमीरों* को नगद वेतन के स्थान पर राजस्व अधिकार अनुदानों (*इक्ता*) का आवंटन किया। *इक्ता* प्रणाली के बारे में हम विस्तार से इस पाठ्यक्रम की **इकाई 9** में चर्चा करेंगे। इस इकाई में हम आपको दिल्ली सल्तनत के केंद्रीय और प्रांतीय प्रशासन तथा सल्तनत की प्रकृति के विषय में बताएंगे।

इस इकाई से आप मुगल राज्य व्यवस्था की समग्र कार्यपद्धति की भी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। मुगल प्रशासनिक व्यवस्था का आधारभूत उद्देश्य साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों पर नियंत्रण स्थापित करना था ताकि मुगल संप्रभुता को चुनौती देने वाले विरोधी तत्वों को रोका जा सके। आप यह जानेंगे कि मुगल प्रशासन के सामने सबसे बड़ी समस्या यह थी कि मुगल साम्राज्य के प्रत्येक हिस्से में विभिन्न क्षेत्रों के लोग निवास करते थे जिन पर उनके स्थानीय शासकों या स्वायत्त प्रमुखों का काफी प्रभाव था। मुगल राज्य व्यवस्था की यह विशेषता थी कि इसने विद्रोही राजाओं और सरदारों को न केवल प्रशासनिक व्यवस्था में शामिल किया बल्कि उनसे सैन्य सेवाएं भी प्राप्त की गईं (विस्तृत जानकारी के लिए इस पाठ्यक्रम की **इकाई 8** देखें)। इस विशाल प्रशासन को बनाए रखने के लिए भू-राजस्व के रूप में ग्रामीण अधिशेष का अधिकतम भाग प्राप्त होना आवश्यक था। मुगल राज्य व्यवस्था में इसे वसूलने पर विशेष ध्यान दिया गया था।

7.2 दिल्ली सल्तनत और खिलाफत

पैगंबर हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के बाद खिलाफत नामक संस्था अस्तित्व में आई। हज़रत अबू बकर मुस्लिम समुदाय (*उम्मा* या *उम्मत*) के पहले प्रमुख (*खलीफा*) बने। प्रारंभ में सत्ता के उत्तराधिकारी के विषय में चुनाव के कुछ तत्व मौजूद थे। यह प्रथा अपने पूर्व की कबीलाई परंपरा से अधिक भिन्न नहीं थी।

इस्लामी व्यवस्था में खलीफा को धर्म का संरक्षण और राजनीतिक व्यवस्था को बनाए रखने वाला समझा जाता था। वह पूरे (मुस्लिम) समुदाय का प्रमुख था। पहले चार ‘पवित्र खलीफाओं’ (हज़रत अबू बकर, हज़रत उमर, हज़रत उस्मान और हज़रत अली) के काल के बाद बादशाही शासन (dynastic rule) की प्रथा प्रारंभ हुई जब 661 में उमय्यद वंश का शासन स्थापित हुआ जिसका केंद्र सीरिया में डमेस्कस में था। उमय्यद वंश के बाद 9वीं सदी के मध्य में अब्बासी वंश सत्ता में आया। इस वंश का केंद्र स्थल बगदाद में था। समय के साथ केंद्रीय सत्ता क्षीण हो गई और खलीफा की केंद्रीकृत संस्था तीन प्रमुख सत्ता केंद्रों में बंट गई। स्पेन (उमय्यद वंश की एक शाखा के अधीन), मिस्र (फातिमा वंश के अधीन) और प्रचीनतम बगदाद में। इनमें से प्रत्येक मुसलमानों की निष्ठा प्राप्त करने का दावा करता था। भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा के पास कुछ छोटे वंशों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली थी। इनमें से एक का केंद्र गुज़ना था। यहाँ यह महत्वपूर्ण बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि सिद्धांततः कोई मुसलमान बड़ा या छोटा ‘स्वतंत्र’ राज्य स्थापित नहीं कर सकता था। ऐसे किसी भी राज्य के लिए खलीफा की अनुमति लेना आवश्यक था, अन्यथा मुसलमानों की नज़र में ऐसे राज्य की वैधता संदेहास्पद हो जाती। परंतु खलीफा की यह अनुमति औपचारिकता से अधिक कुछ नहीं थी और इस औपचारिकता का पालन करना सुरक्षित था।

दिल्ली के सुल्तानों द्वारा खलीफा को मान्यता देना, *खिल्लत* (robes of honour) की प्राप्ति, प्रतिष्ठापन पत्र (letter of investiture) की प्राप्ति, सम्मानसूचक उपाधियों की प्राप्ति, खलीफा का नाम सिक्कों पर खुदवाना तथा शुक्रवार की नमाज़ के समय खलीफा के नाम से धर्मोपदेश (*खुतबा*) जारी करने के प्रतीकों के रूप में होता था। यह एक ऐसा कार्य था जो इस्लामी विश्व या व्यवस्था को स्वीकार करना या उससे संबंध बनाए रखने का प्रतीक था। परंतु वास्तविकता में यह केवल ऐसी स्थिति को स्वीकार करना था, जिसमें कोई शासक अपने आपको स्वयं सत्ता में स्थापित कर चुका था। दिल्ली के सुल्तानों ने खलीफा के पद की महत्ता के भ्रम को बनाए रखा। सैय्यद वंश (1414-1451) तथा लोदी वंश (1451-1526) के दौरान सिक्कों पर लेखन (*खुतबा* से संबंधित) एक परम्परा के रूप में जारी रहा। परंतु यह निष्ठा केवल नाममात्र की थी। वास्तव में खिलाफत (एक संस्था के रूप में) कमज़ोर हो चुकी थी। वैसे दूरी भी इतनी अधिक थी कि खलीफा दिल्ली सल्तनत में कोई हस्तक्षेप या भूमिका निभाने की स्थिति में नहीं था।

7.3 दिल्ली सल्तनत के अधीन प्रशासन की प्रकृति

युद्धों में विजयों के आधार पर उत्तर भारत में प्रारंभिक मुस्लिम तुर्की राज्य की स्थापना हुई। जीते हुए प्रदेशों में जहाँ तुर्की शासन स्थापित किया गया, स्थानीय जनसंख्या की तुलना में तुर्क संख्या में काफी कम थे। साथ ही उनके पास साधनों की भी कमी थी। इसलिए इन प्रदेशों के साधनों पर अधिकार करना उनके लिए बहुत ज़रूरी था। इसका (साधनों पर अधिकार करने की आवश्यकता) महत्वपूर्ण प्रभाव तुर्की राज्य की प्रकृति पर पड़ा।

सैद्धांतिक और औपचारिक रूप से दिल्ली सुल्तानों ने इस्लामिक कानूनों (*शरियत*) की सर्वोच्चता को मान्यता दी और उसके खुलेआम उल्लंघन को रोकने का प्रयास किया। इस्लामी कानूनों के अतिरिक्त उन्होंने धर्मनिरपेक्ष अधिनियमों (*ज़वाबित*) भी बनाए। कुछ विद्वानों के अनुसार तुर्की राज्य धर्म पर आधारित राज्य था, हालांकि व्यवहार में तुर्की राज्य उस कार्य साधकता और अनिवार्यता की उपज था, जिसमें नवस्थापित राज्य की ज़रूरतें सर्वाधिक महत्वपूर्ण थीं। समकालीन इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी ‘जहांदारी’ (धर्मनिरपेक्ष) और ‘दीनदारी’ (धार्मिक) के अंतर को रेखांकित करता है। साथ ही, बरनी कुछ धर्मनिरपेक्ष लक्षणों की आवश्यकता को भी आकस्मिक परिस्थितियों की पूर्ति के लिए स्वीकारता है। इस प्रकार, नवस्थापित राज्य ने बहुत सी ऐसी नीतियों और प्रथाओं को जन्म दिया जो मूलभूत इस्लामी परंपरा के अनुकूल नहीं थीं। उदाहरण के लिए, इल्तुतमिश के शासनकाल (1210-1236) में मुस्लिम धार्मिक वर्ग के एक कट्टर समुदाय (*शफाई*) ने सुल्तान से कहा कि वह इस्लामी कानून को सख्ती से लागू करें, विशेषकर हिंदुओं से यह कहा जाए कि या तो वे इस्लाम धर्म को स्वीकार करें या मृत्यु। सुल्तान की ओर से उसके *वज़ीर* जुनैदी ने जवाब दिया कि यह विचार स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि मुसलमान खाने में नमक के बराबर (संख्या में कम) हैं। इतिहासकार बरनी सुल्तान अलाउद्दीन खलजी और उसके राज्य के एक प्रमुख

धर्मशास्त्री काज़ी मुगीसुद्दीन के वार्तालाप का वर्णन करता है। यह वार्तालाप युद्ध में जीते गए माल के बंटवारे के संबंध में है। काज़ी ने सुल्तान से कहा कि धार्मिक कानून (इस्लामी) के अनुसार सुल्तान युद्ध में जीते गए माल का अधिकांश हिस्सा अपने पास नहीं रख सकता। जवाब में सुल्तान ने इस बात पर जोर दिया कि उसने राज्य की आवश्यकता के अनुसार कार्य किया, जो उसकी दृष्टि में सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। उपरोक्त उदाहरण यह दिखाते हैं कि व्यवहार में तुर्की राज्य एक धर्म-आधारित या धर्म-केंद्रित राज्य नहीं था। हालांकि शासक वर्ग इस्लाम धर्म का अनुयाई था, फिर भी राज्य की नीतियों का निर्धारण अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुसार होता था।

7.4 दिल्ली सल्तनत के अधीन केंद्रीय प्रशासन

सल्तनत के केंद्रीय प्रशासन का संचालन सुल्तान की अधीनता में विभिन्न अमीरों की देख-रेख में होता था।

7.4.1 सुल्तान

प्रारंभिक इस्लामी व्यवस्था में सुल्तान के पद का कोई अस्तित्व नहीं था। खिलाफत की शक्ति के क्षीण होने के साथ सुल्तान एक शक्तिशाली शासक के रूप में अस्तित्व में आया। वह एक स्वतंत्र राज्य के सार्वभौमिक शासक के रूप में था।

दिल्ली सुल्तान जनहित के लिए नागरिक और राजनीतिक नियम बनाते थे। *खुतबा* और *सिक्के* प्रभुसत्ता के प्रतीक समझे जाते थे। *खुतबा* एक औपचारिक धर्मोपदेश है जो शुक्रवार के समय पढ़ा जाता है। इसमें सुल्तान का नाम समुदाय प्रमुख के रूप में लिया जाता था। सिक्कों को जारी करना भी राजसत्ता का अधिकार था। सिक्कों पर सुल्तान का नाम खुदा रहता था।

दिल्ली सल्तनत के राजवंशों में बार-बार परिवर्तन हुए। सुल्तान या सिंहासन पर अधिकार करने के इच्छुक कोई भी व्यक्ति अमीरों या कुलीनों के समर्थन के बिना सत्ता पर अधिकार नहीं रख सकता था। यह अमीर स्वयं कई गुटों में बटे हुए थे। बरनी के अनुसार, बलबन ने सुल्तान के पद को अत्यंत महत्व दिया और उसे 'पृथ्वी पर ईश्वर की प्रतिछाया' (*ज़िल-अल अल्लाह*) बताया। बलबन ने दरबार की शान-शौकत, मर्यादा और शिष्टाचार पर बहुत बल दिया। वह अमीरों को भी कड़े दंड देता था, ताकि औरों को सबक मिले। यह सब एक ऐसी स्थिति दर्शाते हैं जिसमें सिंहासन अमीरों की महत्वाकांक्षा के सामने सुरक्षित नहीं था। बहुत से अमीर यह विश्वास रखते थे कि उनको भी शासन करने का समान अधिकार था।

राजपरिवार/दरबार की देखभाल के लिए बहुत से अधिकारी थे। *वकील-ए दर* पर पूरे महल या राजपरिवार की देखभाल का उत्तरदायित्व था। सुल्तान के निजी कर्मचारियों के वेतन आदि बांटना भी उसका कार्य था। *अमीर-ए हाजिब* पर दरबार के समारोहों और शिष्टाचार का उत्तरदायित्व था। सुल्तान के समक्ष सभी आवेदन और याचिकाएँ *अमीर-ए हाजिब* द्वारा प्रस्तुत की जाती थीं। कई अन्य छोटे पदाधिकारी भी होते थे।

7.4.2 विज़ारत (वित्त)

केंद्रीय प्रशासन में वित्त विभाग (*दीवान-ए विज़ारत*) के प्रमुख के रूप में *वज़ीर* का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। हालांकि वह चार प्रमुख विभागों में से एक विभाग का प्रमुख था, लेकिन वह अन्य विभागों का निरीक्षण करने का अधिकार रखता था। *विज़ारत* विभाग के प्रमुख कार्य थे:

- राजस्व वसूल करना,
- व्यय पर नियंत्रण रखना,
- लेखा या हिसाब-किताब रखना,
- वेतन बांटना, तथा
- सुल्तान के आदेश पर *इक्ता* आबंटन की व्यवस्था करना।

वज़ीर के अतिरिक्त, इस विभाग में कई अन्य अधिकारी भी थे। इनमें **मुशरिफ़-ए मुमालिक** अथवा प्रमुख लेखाकार (accountant-general) तथा **मुसतौफ़ि-ए मुमालिक** अथवा लेखा परीक्षक (auditor-general) महत्वपूर्ण थे। अलाउद्दीन खलजी के शासनकाल में **दीवान-ए मुस्तख़राज** नामक अधिकारी को राजस्व का बकाया (arrears) वसूल करने का कार्य भार सौंपा गया था।

7.4.3 दीवान-ए अर्ज

दीवान-ए अर्ज अथवा सैन्य विभाग का प्रमुख **आरिज़-ए मुमालिक** था। वह सैनिक और सेना संबंधी कार्यों के लिए उत्तरदायी था। वह **इक्ता** धारकों के सैनिकों का निरीक्षण करता था। वह सुल्तान की सेना के रसद विभाग और परिवहन विभाग की देखभाल और नियंत्रण करता था। अलाउद्दीन खलजी के शासनकाल में सेना की भर्ती और योग्यता पर नियंत्रण रखने के लिए कुछ नए नियम बनाए गए। उसने प्रत्येक सैनिक का **हुलिया** (सैनिक के पहचान चिह्न, आदि) रखने पर बल दिया। साथ ही, यह भी आदेश दिया कि घोड़ों पर **दाग** (चिह्न) लगाया जाए ताकि हाजिरी के समय **अमीर** या **इक्ता** धारक धोखा देकर बार-बार एक ही घोड़ा न पेश कर सकें, या खराब और निम्न कोटि के घोड़े न रखें। ऐसा प्रतीत होता है कि घोड़े दागने की प्रथा मुहम्मद तुगलक के समय तक सख्ती से जारी रही।

7.4.4 अन्य विभाग

दीवान-ए इंशा नामक विभाग पर राज्य के पत्राचार का उत्तरदायित्व था। इस विभाग का प्रमुख **दबीर-ए मुमालिक** था। यह विभाग सुल्तान और अन्य देशों के बीच तथा सुल्तान और प्रांतीय शासकों के बीच पत्राचार पर नियंत्रण रखता था। इसी विभाग द्वारा **फरमान** (शाही आदेश) जारी किए जाते थे और अधीनस्थ अधिकारियों के पत्र प्राप्त किए जाते थे।

बरीद-ए मुमालिक राज्य के संवाद या समाचार विभाग का प्रमुख था। उसे पूरी सल्तनत में होने वाली घटनाओं का लेखा-जोखा रखना होता था। राज्य के प्रत्येक प्रशासनिक खंडों या प्रशासनिक केंद्रों पर **बरीद** नामक स्थानीय अधिकारी रहता था, जो केंद्रीय विभाग को उस स्थान की घटनाओं और समाचारों की सूचना भेजा करता था। **बरीद** राज्य संबंधी सूचनाएँ जैसे युद्ध, विद्रोह, स्थानीय मामले, वित्त तथा कृषि की स्थिति आदि प्रेषित करता था। **बरीद** के अतिरिक्त एक अन्य कर्मचारी वर्ग, जिसे **मुनहियान** कहते थे, सूचनाएँ भेजने का कार्य करता था।

दीवान-ए रिसालत नामक विभाग का प्रमुख **सद्र-उस सुदूर** था। वह सर्वोच्च धर्माधिकारी था। इस विभाग का कार्य धार्मिक कार्यकर्ताओं पर दृष्टि रखना और **काज़ियों** की नियुक्ति करना था। यही अधिकारी विभिन्न प्रकार के अनुदानों, जैसे **वक्फ**, धार्मिक और शिक्षण संबंधित संस्थाओं के लिए, विद्वानों और निर्धनों को **वज़ीफा** और **इदरार** को अनुमोदित करता था।

न्यायपालिका का प्रमुख स्वयं सुल्तान था। अपराध संबंधी और माल एवं दीवानी संबंधित सभी मामलों में सुल्तान ही सर्वोच्च तथा अंतिम न्यायालय था। सुल्तान के बाद राज्य का प्रमुख न्यायाधीश **काज़ी-उल मुमालिक** (या **काज़ी-उल कुज़्ज़ात**) था। बहुधा **सद्र-उस सुदूर** तथा **काज़ी-उल मुमालिक** का पद एक ही व्यक्ति के पास होता था। यह प्रमुख **काज़ी** न्याय-व्यवस्था का प्रमुख था तथा अधीनस्थ न्यायालयों के मुकदमों की अपील उसके यहां की जा सकती थी।

मुहतसिब (public censor; नागरिक नियंत्रक) न्याय विभाग की सहायता करता था। इनका कार्य यह देखना था कि जनता द्वारा कहीं इस्लामी कानूनों का उल्लंघन तो नहीं किया जा रहा।

7.4.5 दास और कारखाने

शाही महल व्यवस्था में गुलाम एक प्रमुख स्थान रखते थे। अलाउद्दीन खलजी के पास 50,000 दास थे, जबकि फिरोज़ तुगलक के पास लगभग 1,80,000 दास थे। उसके शासनकाल में दासों के लिए एक अलग विभाग (**दीवान-ए बंदगाने**) स्थापित किया गया था। दास प्रमुखतः सुल्तान के निजी सेवकों और अंगरक्षकों के रूप में कार्य करते थे (अंगरक्षक के रूप में लगभग 40,000 दास थे)। समकालीन इतिहासकार अफीफ के अनुसार, फिरोज़ के गुलामों की बड़ी संख्या (लगभग 12,000) कारीगर (**कासिब**) के रूप में कार्य करती थी। बरनी भी दिल्ली के पास गुलामों के एक बड़े बाजार का वर्णन करता है। लेकिन 16वीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश (पहले 25 वर्ष) से गुलामों के बाजार का कोई विवरण नहीं मिलता।

राजपरिवार और शाही प्रतिष्ठान की आवश्यकताओं की पूर्ति कारखानों द्वारा की जाती थी। यह कारखाने दो प्रकार के थे: i) उत्पादन स्थल; और ii) गोदाम घर। यहाँ तक कि राजसी ग्रंथालय (किताबीखाना) का विवरण भी एक कारखाने के रूप में मिलता है। फिरोज़ तुगलक के शासनकाल में 36 कारखाने थे। प्रत्येक कारखाने का प्रमुख एक अमीर होता था, जिसका पद मलिक या खान के बराबर का था। प्रत्येक कारखाने की देखभाल, नियंत्रण और हिसाब का लेखा रखने के लिए प्रमुख अधिकारी मुतसरिफ होता था। कारखानों के हिसाब आदि के निरीक्षण के लिए एक पृथक दीवान या लेखा विभाग भी होता था।

कारखानों में राजसी प्रयोग के लिए अथवा सेना के लिए वस्तुओं का उत्पादन होता था। कहा जाता है कि मुहम्मद तुगलक ने ज़री के काम (सोने-चांदी के तारों से कढ़ाई का काम) के लिए 500 कारीगर रखे थे तथा लगभग 4000 बुनकर राजदरबार और सुल्तान द्वारा उपहार में दिए जाने वाले वस्त्रों (खिल्लत) की आपूर्ति के लिए कपड़ा बनाते थे। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि शाही कारखानों में निर्मित माल व्यवसायिक माल नहीं था, अर्थात् माल बाजार में बेचने के लिए नहीं उत्पादित किया जाता था। अमीर या कुलीन भी निजी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने कारखाने स्थापित करते थे।

बोध प्रश्न-1

- 1) खिलाफत के प्रति निष्ठा दिखाने के लिए दिल्ली के सुल्तान किन प्रतीकों का प्रयोग करते थे?

.....

.....

.....

.....

- 2) दीवान-ए विज़ारत के प्रमुख कार्यों का विवरण दीजिए।

.....

.....

.....

.....

- 3) कारखानों पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

- 4) निम्नलिखित का विवरण कीजिए:

क) मुशरिफ-ए मुमालिक

.....

ख) अरिज़-ए मुमालिक

.....

ग) बरीद

.....

घ) काज़ी-ए मुमालिक

.....

जब राज्य व्यवस्थित होने लगा तो अधिक केंद्रीकरण के प्रयास होने लगे। प्रांतीय प्रशासन में भी परिवर्तन हुए। अब वित्तीय और सैनिक उत्तरदायित्व को पृथक करने की प्रक्रिया आरंभ हुई। मुहम्मद तुगलक के काल में **मुक्ती** और **वली** के हाथ में कुछ वित्तीय अथवा राजस्व संबंधी अधिकार वापस लिए गए और केंद्रीय अधिकारियों को दे दिए गए। इब्न बतूता के अनुसार, अमरोहा का **इक्ता** दो अधिकारियों के अधीन था। एक **अमीर** कहलाता था (संभवतः सेना और प्रशासन का प्रमुख) तथा दूसरा **वली-उल खराज** (राजस्व वसूलने का प्रमुख) था। मुहम्मद तुगलक का यह भी आदेश था कि **इक्ता** धारकों के सैनिकों को **दीवान-ए विज़ारत** से वेतन दिया जाए ताकि यह अधिकारी छल-कपट न कर सकें।

वित्त संबंधी मामलों में राज्य का नियंत्रण बढ़ गया। केंद्र में **दीवान** के कार्यालय में प्रांतों से आय और व्यय का विस्तृत लेखा भेजने की व्यवस्था की गई, जिसकी बारीकी से जांच होती थी। **दीवान** का कार्यालय प्रांतों में नियुक्त अधिकारियों के कार्य की देखभाल और निरीक्षण भी करता था। प्रांतों में **साहिब-ए दीवान** नामक अधिकारी की नियुक्ति भी की गई। यह कार्यालय बही-खाते का हिसाब रखता था तथा केंद्र को सूचनाएँ तथा जानकारी प्रेषित करता था। इस अधिकारी की सहायता के लिए **मुतसर्रिफ** नियुक्त किए जाते थे। राजस्व विभाग के समस्त अधीनस्थ कर्मचारियों को **कारकुन** कहा जाता था।

13वीं शताब्दी के अंत में समकालीन स्रोतों में एक अन्य प्रशासनिक इकाई **शिक** का वर्णन भी मिलता है। **शिक** के विषय में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं है। परंतु शेरशाह के काल (1540-1545) में **शिक** एक सुनिश्चित प्रशासनिक इकाई के रूप में स्थापित हो गई, जिसे **सरकार** कहा जाने लगा। **शिक** से संबंधित प्रशासनिक अधिकारियों के विवरण **शिकदार** या **फौजदार** के रूप में मिलते हैं। इन अधिकारियों के कार्यों के विभाजन के विषय में जानकारी स्पष्ट नहीं है।

इब्न बतूता के अनुसार, **चौधरी** एक सौ गांवों का प्रधान होता था। आगे चलकर यह **परगना** नामक प्रशासनिक इकाई का केंद्र-बिंदु बना। गांव प्रशासन की सबसे छोटी इकाई था। गांव की प्रशासनिक व्यवस्था लगभग वही रही, जो तुर्की आक्रमण से पहले थी। गांव के प्रमुख पदाधिकारी और कार्यकर्ता **खोत**, **मुकद्म** (ग्राम प्रधान) तथा **पटवारी** थे।

प्रांतों तथा अन्य प्रशासनिक इकाइयों में न्याय-व्यवस्था का स्वरूप केंद्रीय ढांचे के अनुरूप था। प्रांतों में **काज़ी** और **सद्र** के न्यायालय थे। **कोतवाल** का कार्य कानून और व्यवस्था बनाए रखना था। गांव के स्तर पर दीवानी और संपत्ति संबंधी मामलों का निपटारा **ग्राम पंचायत** करती थी।

7.6 शेरशाह के अधीन प्रशासन

मुगल प्रशासनिक ढांचे की विकास प्रक्रिया में अफगान अंतराल (1540-1555) का विशेष महत्व है। शेरशाह के काल में एक ऐसी नौकरशाही के निर्माण का प्रयोग किया गया जो केंद्रीकृत, निरंकुश राज्य व्यवस्था के अधीन कार्य करती थी। अकबर ने इस व्यवस्था को निश्चित रूप प्रदान किया।

शेरशाह के केंद्रीय प्रशासन की कार्यपद्धति के बारे में हमारे स्रोतों में सीमित जानकारी मिलती है। परंतु वह एक निरंकुश शासक था और राज्य के सभी कार्य अपने प्रत्यक्ष निरीक्षण और नियंत्रण में रखता था। अपनी योग्यता के कारण वह स्वयं तो इस प्रकार की निरंकुश व्यवस्था को ठीक ढंग से चला सका परंतु उसके उत्तराधिकारी उसके समान योग्य सिद्ध न हो सके।

प्रशासन की सबसे छोटी इकाई गांव थे। कई गांवों को मिलाकर एक **परगना** और कुछ **परगनों** को मिलाकर एक **शिक** बनता था, जो मुगल प्रशासनिक इकाई **सरकार** के बराबर था। कुछ इलाकों जैसे पंजाब, बंगाल, मालवा आदि में कई **शिकों** को मिलाकर एक पदाधिकारी के अधीन रखा जाता था। इस पदाधिकारी की तुलना मुगल **सूबेदार** के साथ की जा सकती है। **मुकद्म** गांव का मुखिया होता था, जो राज्य और गांव के बीच कड़ी का काम करता था। हालांकि वह सरकारी नौकर नहीं था, फिर भी अपने गांव की कानून और व्यवस्था की देखभाल के लिए वही

उत्तरदाई था। **पटवारी** गांव के सभी ब्यौरों का लेखा-जोखा रखता था। **मुकदम** की तरह वह भी राज्य का नहीं गांव का सेवक होता था।

परगना का प्रभारी **शिकदार** कहलाता था। **परगना** स्तर पर राजस्व वसूल करना उसकी मुख्य जिम्मेदारी थी। शेरशाह के काल में उसका हमेशा स्थानांतरण होता रहता था। उसकी सहायता के लिए दो **कारकुन** (क्लर्क) होते थे, जो हिंदी और फारसी दोनों में लेखा-जोखा रखते थे। जमीन आदि नापने का काम **मुंसिफ** के जिम्मे था। **शिकदार** और **मुंसिफ** दोनों की नियुक्ति सीधे सम्राट द्वारा होती थी। **परगना** स्तर के राजस्व ब्यौरों का रख-रखाव **कानूनगो** करता था। वह अनुवांशिक अर्ध-सरकारी पदाधिकारी था। **परगना** के खजाने का जिम्मा **फोतेदार** के पास होता था।

कई **परगनों** को मिलाकर प्रशासनिक इकाई **सरकार (शिक)** बनती थी, जिसका प्रमुख अधिकारी **शिकदार-ए शिकदारान** होता था। वह एक **सरकार** के सभी **शिकदारों** का प्रमुख पर्यवेक्षक तथा प्रशासनिक अधिकारी था। **मुंसिफ-ए मुंसिफान सरकार (शिक)** स्तर का अधिकारी था। इसका कार्यक्षेत्र मुगल शासन के **अमीन** की भांति था। शेरशाह के साम्राज्य में 66 **सरकारें (शिकें)** थीं।

शेरशाह ने न्याय प्रशासन को विशेष महत्व दिया। मुसलमानों के दीवानी मामलों का निपटारा **काज़ी** तथा फौजदारी मामलों का निपटारा **शिकदार** करता था। अपराधों का पता लगाने की प्रमुख जिम्मेदारी **मुकदम** पर होती थी। जिस गांव में अपराध होता था, उसका **मुकदम** अगर अपराधी को पकड़ने में सफल नहीं होता था तो स्वयं दंड का पात्र हो सकता था।

बोध प्रश्न-2

1) **वर्ली** अथवा **मुक्ती** के क्या कार्य थे?

.....

.....

.....

2) शिक क्या थीं ? इसके प्रमुख **अधिकारियों** का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

3) शेरशाह की न्यायिक प्रणाली की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

7.7 मुगलों के अधीन केंद्रीय प्रशासन का विकास

मुगल साम्राज्य की प्रकृति अखिल भारतीय थी। बाबर और हुमायूं अपने छोटे से शासनकाल में सैन्य मामलों में उलझे रहने के कारण प्रशासन को व्यवस्थित करने की ओर ध्यान न दे सके।

अकबर के काल में प्रशासनिक व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया गया। उसके शासनकाल के अंत तक समुचित और व्यापक विभाग स्थापित हो गए, और उनके शीर्ष अधिकारियों का कार्य भी नियत कर दिया गया। प्रशासनिक अधिकारियों के सार्वजनिक और निजी जीवन से संबंधित आचार संहिता भी स्थापित कर दी गई ताकि वे ‘साम्राज्य के मजबूत स्तंभों’ के रूप में काम कर सकें।

प्राचीन भारतीय परंपराओं में हमेशा शक्तिशाली राजा की बात की गई है। मुसलमान न्यायविदों और लेखकों का भी यही मानना था। अतः भारतीय जन समुदाय में राजतंत्र की दैवीय उत्पत्ति के सिद्धांत को आसानी से स्थापित किया जा सकता था। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मुगलों ने पूरी तड़क-भड़क के साथ 'झरोखा दर्शन' को प्रचारित किया, जिसमें सम्राट एक खास समय पर आम जनता को दर्शन देता था। एक किंवदंती थी कि महामहिम सम्राट के दर्शन मात्र से ही उनकी इच्छाएं पूरी हो जाएंगी।

शासक की ऐसी लोकप्रिय अवधारणा को देखते हुए यह स्वभाविक था कि मुगल प्रशासन के सभी अधिकारियों की स्थिति और शक्ति सम्राट पर निर्भर होती थी। शासक की व्यक्तिगत पसंद और विचार पर ही उनकी नियुक्ति, पदोन्नति, अवनति और बर्खास्तगी निर्भर करती थी।

7.7.2 वकील और वज़ीर

कुछ उद्धरणों के अनुसार *वज़ारत* की संस्था (इसे *वकालत* भी कहा जाता है, दोनों शब्दों का पर्याय के रूप में इस्तेमाल होता था) का अस्तित्व अब्बासी खलीफाओं के समय से माना जाता है। दिल्ली सल्तनत में *वज़ीर* के पास नागरिक और सैनिक दोनों शक्तियाँ थीं। लेकिन बलबन के समय में उनकी शक्ति कम कर दी गई और सुल्तान ने सैन्य अधिकार *दीवान-ए अर्ज़* को सौंप दिए। जहाँ तक शेरशाह के शासनकाल का प्रश्न है, अफगानों के काल में यह पद महत्वहीन हो गया।

मुगलों के आरंभिक काल में *वज़ीर* की स्थिति पुनः स्थापित हुई। बाबर के *वज़ीर* निज़ामुद्दीन मुहम्मद खलीफा के पास नागरिक के साथ-साथ सैनिक अधिकार भी थे। हुमायूँ के *वज़ीर* हिंदू बेग के पास भी वस्तुतः काफी अधिकार थे।

बैरम खाँ के संरक्षण के काल (1556-1560) में *वकील-वज़ीर* का पद अपने उत्कर्ष पर पहुँच गया। बैरम खाँ ने इस पद पर रहते हुए असीम अधिकार प्राप्त किए। अपने शासनकाल के 8वें वर्ष (1564-1565) में अकबर के *वकील* से वित्तीय अधिकार ले लिए और इन्हें *दीवान-ए कुल* (वित्त मंत्री) नामक नए पदाधिकारी को सौंप दिया गया। वित्तीय अधिकार छीन लिए जाने के कारण *वकील* की शक्ति को गहरा धक्का पहुँचा। *वकील* की शक्ति में कमी आने के बावजूद मुगल अधिकारी तंत्र के पदानुक्रम में उसका स्थान सर्वोच्च रहा।

7.7.3 दीवान-ए कुल

हमने अभी पढ़ा कि कैसे राजस्व अधिकार प्रदान कर अकबर ने *दीवान* का पद पुनः स्थापित किया। मुख्य *दीवान* (*दीवान-ए कुल*) पर राजस्व और वित्त का भार सौंपा गया। राजकीय कोष का निरीक्षण और लेखा संबंधी जांच करना उसका प्राथमिक कार्य था।

वह प्रत्येक विभाग में होने वाले सभी लेन-देन और भुगतानों का व्यक्तिगत तौर पर निरीक्षण करता था। वह प्रांतीय *दीवानों* से प्रत्यक्ष संपर्क रखता था और वे उसकी निगरानी में कार्य करते थे। राजस्व संबंधी सभी सरकारी कागजातों पर उसकी मुहर तथा हस्ताक्षरों का होना अनिवार्य था। साम्राज्य का राजस्व संबंधी (वसूली और व्यय संबंधी) समस्त प्रशासन उसके जिम्मे था। उसकी मुहर के बिना नियुक्ति या पदोन्नति संबंधी कोई नया आदेश जारी नहीं किया जा सकता था। *दीवान* की शक्ति पर नियंत्रण रखने के लिए मुगल सम्राट ने *दीवान* को राज्य की वित्तीय स्थिति का ब्यौरा प्रतिदिन प्रस्तुत करने का आदेश दिया।

साम्राज्य की विभिन्न जरूरतों को ध्यान में रखकर केंद्रीय राजस्व मंत्रालय को कई विभागों में विभक्त कर दिया गया। उदाहरणस्वरूप, *दीवान-ए खालिसा*, *दीवान-ए तन* (नगद वेतन के लिए), *दीवान-ए जागीर*, *दीवान-ए बुयुतात* (राजमहल के मामले), आदि।

उपरोक्त प्रत्येक विभाग पुनः कई भागों में विभाजित थे। प्रत्येक विभाग में सचिव, निरीक्षक और क्लर्क होते थे। *मुस्तौफी* लेखा परीक्षक होता था और मुख्य लेखाधिकारी *मुशरिफ* था। *खज़ानादार* राजकीय कोष की देखभाल करता था।

7.7.4 मीर बख्शी

दिल्ली सल्तनत के मीर अर्ज का नाम बदलकर मुगलकाल में मीर बख्शी हो गया। मनसबदारों की नियुक्ति और वेतन संबंधी कागजात उसी के द्वारा अनुशंसित और अग्रसरित किए जाते थे। वह व्यक्तिगत तौर पर घोड़ों की निशानदेही (दाग) का निरीक्षण करता था और सैनिकों की उपस्थिति (चेहरा) की जांच करता था। निरीक्षण के आधार पर ही वेतन का निर्धारण किया जाता था। इसके बाद ही दीवान अपने दूसरे कागजात में इसे दर्ज करता था और फिर इसे सम्राट के सामने प्रस्तुत किया जाता था। मीर बख्शी सम्राट के समक्ष सैन्य विभाग संबंधी सभी मामले रखता था। मीर बख्शी नौकरी पाने के प्रत्याशियों को सम्राट के समक्ष प्रस्तुत करता था। वह प्रांतीय बख्शियों और वकाया नवीसों से सीधा संपर्क रखता था। वह यात्राओं, सैर-सपाटे, शिकार और युद्ध क्षेत्र आदि में सम्राट के साथ रहता था। दरबार में मनसबदारों के ओहदों के अनुसार उनका स्थान निर्धारित करना उसी का काम था। दरबार की उसकी इस जिम्मेदारी के कारण उसका सम्मान और प्रभाव काफी बढ़ गया था।

केंद्रीय स्तर पर मीर बख्शी की सहायता के लिए अनेक बख्शी थे। प्रथम तीन को पहला दूसरा और तीसरा बख्शी कहा जाता था। जबकि अहदियों (सम्राट के विशेष सैनिक) के लिए अलग बख्शी और महल के कर्मचारियों के लिए अलग बख्शी (बख्शी-ए शागिर्द पेशा) नियुक्त था।

7.7.5 मीर सामां

मीर सामां राजकीय कारखानों का प्रभारी होता था। उसे खान-ए सामां के नाम से भी जाना जाता था। राजकीय महल के सामानों की खरीद और उनके भंडारण की जिम्मेदारी भी उसी की थी और वह इन मामलों का मुख्य कार्यकारी अधिकारी था। इसके अतिरिक्त युद्ध के अस्त्रों से लेकर विलास की वस्तुओं तक के उत्पादन का निरीक्षण करना भी उसका उत्तरदायित्व था। वह सीधे सम्राट के अधीन था, परंतु धनराशि आवंटित करवाने और लेखा के परीक्षण के लिए उसे दीवान से संपर्क करना पड़ता था।

मीर सामां के अधीन कई अधिकारी कार्य करते थे, इसमें दीवान-ए बुयुतात और तहवीलदार (कोषाधिकारी) प्रमुख थे।

7.7.6 सद्र-उस सुदूर

सद्र-उस सुदूर धार्मिक मामलों से संबंधित विभाग का अध्यक्ष था। उसका मुख्य कार्य शरियत के कानून का संरक्षण था। नकद दान (वजीफा) और भूमि अनुदान (सुयूरगाल, इनाम, मदद-ए माश) का वितरण करना भी उसके जिम्मे था।

आरंभ में न्यायिक विभाग के अध्यक्ष के रूप में वह काज़ियों और मुफ्तियों की नियुक्ति का पर्यवेक्षण किया करता था। शाहजहां के शासनकाल से पहले काज़ी और सद्र-उस सुदूर का पद एक में मिला हुआ था और एक ही व्यक्ति दोनों विभागों का प्रभारी होता था। परंतु औरंगजेब के शासनकाल में मुख्य काज़ी (काज़ी-उल कुज़्जात) और सद्र-उस सुदूर का पद अलग कर दिया गया। इससे सद्र की शक्ति में भारी कमी आई। अब वह सद्र के रूप में भत्तों की निगरानी और दान तथा अनुदान की देखभाल करता था। वह यह भी देखता था कि अनुदान सही व्यक्ति को दिए गए हैं और उनका उपयोग सही तरीके से हो रहा है या नहीं। वह अनुदान के लिए प्राप्त आवेदनों (नये और नवीनीकरण के लिए प्राप्त) की जांच करता था और स्वीकृति के लिए सम्राट के सामने प्रस्तुत करता था। दान-पुण्य को वितरित कराने का कार्य भी उसके माध्यम से होता था।

काज़ी-उल कुज़्जात

मुख्य काज़ी को काज़ी-उल कुज़्जात के नाम से जाना जाता था। वह न्यायिक विभाग का प्रमुख होता था (हमने पहले ही बता दिया है कि औरंगजेब के शासनकाल के पहले सद्र-उस सुदूर इस कार्य को करता था)। दीवानी और फौजदारी दोनों मामलों में शरियत को लागू करना उसकी प्रमुख जिम्मेदारी थी।

मुख्य काज़ी होने के नाते सूबा, सरकार, परगना और शहरों के स्तर पर काज़ियों की नियुक्ति का कार्य उसके जिम्मे था। सेना के लिए भी एक अलग काज़ी होता था। काज़ी-उल कुज़्जात के अतिरिक्त मीर अद्ल दूसरा महत्वपूर्ण न्यायिक पदाधिकारी था। अबुल फज़ल जोर देकर कहता

है कि काज़ी के साथ-साथ मीर अदल का होना जरूरी था, क्योंकि काज़ी फैसला सुनाता था और मीर अदल इन फैसलों को लागू करता था।

मुहतासिब (जन-नैतिकता का निरीक्षक) का मुख्य कार्य आम जनता के बीच नैतिकता के नियमों का पालन करना था। उसका कार्य शराब पीने, भांग खाने और अन्य नशीली वस्तुओं के उपयोग, जुआ आदि को रोकना और नियंत्रित करना था। इसके अतिरिक्त वह माप-तोल के परीक्षण, मूल्य नियंत्रण, आदि की भी देख-रेख करता था।

7.8 मुगलों के अधीन प्रांतीय प्रशासन

1580 में अकबर ने अपने साम्राज्य को 12 सूबों (प्रांतों) में विभक्त किया। बाद में 3 सूबे और बनाए गए। प्रत्येक सूबा कई सरकारों में विभक्त किया गया और उन्हें परगने और महल में पुनः विभक्त किया गया। शाहजहां के शासनकाल में चकला नाम से एक अन्य प्रशासनिक इकाई सामने आई। यह कई परगनों को मिलाकर बनता था।

7.8.1 प्रांतीय गवर्नर

सूबे के गवर्नर (सूबेदार) की नियुक्ति खुद सम्राट किया करता था। आमतौर पर सूबेदार का कार्यकाल तीन वर्षों का होता था। जनता और सेना के कल्याण की देखरेख का कार्य सूबेदार का एक महत्वपूर्ण दायित्व था। सूबे की आम कानून व्यवस्था की देखरेख करना भी उसके जिम्मे था। कृषि, व्यापार और वाणिज्य को प्रोत्साहित करने वाला सूबेदार सफल माना जाता था। उससे यह उम्मीद की जाती थी कि वह सरायों, जलाशयों, आदि के निर्माण और बाग लगाने जैसे जनकल्याण कार्य करे ताकि राज्य के राजस्व में वृद्धि हो सके।

7.8.2 दीवान

प्रांतीय दीवान की नियुक्ति सम्राट करता था। वह एक स्वतंत्र अधिकारी था और सीधे केंद्र के प्रति जवाबदेह था। वह सूबे के राजस्व विभाग का प्रमुख था।

प्रांतीय दीवान सूबे में की गई राजस्व वसूली का निरीक्षण करता था। सूबे के अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन आदि का पूरा हिसाब-किताब और अन्य व्यय संबंधी विवरण भी रखता था। अपने सूबों में कृषि-क्षेत्र में बढ़ोतरी के लिए प्रयास करना दीवान का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व था। आवश्यकता पड़ने पर उसका कार्यालय कृषकों को अग्रिम कर्ज (तकावी) दिया करता था।

दीवान के पास एक रोज़नामचा (प्रतिदिन की बही पुस्तिका) होता था जिसमें राजस्व अधिकारियों और ज़मींदारों द्वारा राजकीय खजाने में जमा की गई रकम दर्ज की जाती थी। उसके अधीन कई क्लर्क कार्य करते थे।

इस प्रकार दीवान को सूबेदार से अलग करके और दीवान के हाथों में वित्तीय मामले को देकर मुगल शासक सूबेदारों की शक्ति पर अंकुश लगाने में सक्षम हुए।

7.8.3 बख्शी

सम्राट द्वारा मीर बख्शी की अनुशंसा पर बख्शी की नियुक्ति की जाती थी। वह केंद्र में कार्य कर रहे मीर बख्शी के समान प्रांतों में सेना की देखरेख करता था। वह सूबे में मनसबदारों द्वारा रखे गए घोड़ों और सैनिकों की जांच और निरीक्षण करता था। वह मनसबदारों और सैनिकों का वेतन-पत्र जारी करता था। मृत मनसबदारों की सूची तैयार करना भी उसका काम था। परंतु परगना का वकाय नवीस (सूचनाएँ भेजने वाला) सीधे प्रांतीय दीवान तक सूचना पहुंचा देता था। अक्सर उसका पद वकाया निगार के साथ मिला दिया जाता था। इस रूप से प्रांत की घटनाओं की सूचना केंद्र तक पहुंचाने की जिम्मेदारी भी उसी की हो जाती थी। अपने कार्य को सुचारु रूप से करने के लिए वह अपने प्रतिनिधियों को परगने और अन्य महत्वपूर्ण कार्यालयों में नियुक्त करता था।

7.8.4 दरोगा-ए डाक और गुप्तचर सेवा

एक विशाल साम्राज्य को शासित करने के लिए संचार सेवा का विकास आवश्यक होता है। यह कार्यभार एक अलग विभाग को सौंपा गया था। साम्राज्य के दूर-दराज इलाकों में निर्देश भेजने

के लिए राजकीय डाक सेवा स्थापित की गई थी। इसी के माध्यम से सूचनाएँ भी प्राप्त होती थीं। इस उद्देश्य के लिए प्रत्येक सूबा मुख्यालय में *दरोगा-ए डाक* की नियुक्ति की गई। उसका कार्य तेज *धावकों* (*मेवड़ा*) की मदद से शाही दरबार का पत्र पहुँचाना था। यह इन पत्रों को विभिन्न स्थानों तक पहुँचाने का कार्य करते थे। इस कार्य के लिए पूरे साम्राज्य में *डाक चौकियों* की स्थापना की गई, जहाँ *धावक* रहा करते थे, जो एक चौकी से दूसरी चौकी तक डाक ले जाते थे। तीव्र संचार के लिए घोड़ों और नौकाओं का भी उपयोग किया जाता था।

सम्राट तक सीधी सूचना पहुँचाने के लिए प्रांतीय स्तर पर *वकाया नवीस* और *वकाया निगारों* की नियुक्ति की जाती थी। इसके अलावा सम्राट तक गुप्त सूचनाएँ पहुँचाने के लिए *सवाने निगार* की नियुक्ति होती थी। इन गुप्तचरों की कई रिपोर्टें उपलब्ध हैं। यह दस्तावेज इस काल के इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

इस प्रकार मुगलों ने प्रत्येक विभाग और संस्था को एक दूसरे से पृथक और स्वतंत्र रखकर अपने प्रांतीय पदाधिकारियों पर नियंत्रण रखने में सफलता पाई। इसके अतिरिक्त सम्राट द्वारा प्रत्येक सूबे में बार-बार दौरा करने, लगभग तीन साल की अवधि में पदाधिकारियों के स्थानांतरण, आदि से मुगल शासक पदाधिकारियों पर नियंत्रण रख सके। परंतु विद्रोह की संभावना बराबर बनी रहती थी, अतः बराबर चौकसी के लिए संगठित गुप्तचर सेवा स्थापित की गई।

7.9 मुगलों के अधीन स्थानीय प्रशासन

इस भाग में हम सरकार, परगना और मौजा (गांव) स्तर के प्रशासन की कार्यपद्धति की जानकारी प्राप्त करेंगे।

7.9.1 सरकार

सरकार स्तर पर फौजदार और अमलगुजार दो प्रमुख अधिकारी थे।

फौजदार

वह सरकार का कार्यकारी प्रधान होता था। परंतु उसका प्रभाव क्षेत्र जरा जटिल लगता है। उसे केवल सरकार स्तर पर ही नियुक्त नहीं किया जाता था बल्कि कभी-कभी एक सरकार के भीतर कई फौजदार होते थे। कभी-कभी दो सरकारों में एक ही फौजदार की नियुक्ति होती थी। इसके साथ-साथ *चकलों* में भी विभिन्न फौजदारों की नियुक्ति का हवाला मिलता है। ऐसा लगता है कि उसका मुख्य कार्य विद्रोहों का दमन और कानून व्यवस्था की देखरेख करना था। क्षेत्र की जरूरत के अनुसार उसके कार्यक्षेत्र का निर्धारण होता था।

उसका मुख्य कार्य अपने कार्यक्षेत्र में रह रहे लोगों की जान और माल की सुरक्षा करना था। उसे अपने क्षेत्र में आने-जाने वाले व्यापारियों को सुरक्षा भी प्रदान करनी पड़ती थी। क्षेत्र के मुख्य कार्यकारी की हैसियत से फौजदार को विद्रोही ज़मींदारों पर भी नजर रखनी पड़ती थी। कुछ विशेष परिस्थितियों में उसे राजस्व वसूली में अमलगुजार की भी सहायता करनी पड़ती थी।

अमलगुजार

आमिल या अमलगुजार सर्वप्रमुख राजस्व समाहर्ता था। उसका मुख्य कार्य अपने मातहत पदाधिकारियों के माध्यम से राजस्व वसूली का निर्धारण और निरीक्षण करना था। एक अच्छे आमिल से यह आशा की जाती थी कि वह अपने क्षेत्र में कृषि का विस्तार करे और किसानों को बिना जोर-जबर्दस्ती के राजस्व देने के लिए प्रेरित करे। सभी प्रकार के लेखा की देखभाल भी उसके जिम्मे थी। वह प्रतिदिन की वसूली और व्यय का ब्यौरा प्रांतीय दीवान को भेजता था।

7.9.2 परगना प्रशासन

सरकार के नीचे की प्रशासनिक इकाई परगना थी। परगना का कार्यकारी अधिकारी शिक्दार था और राजस्व वसूली में आमिल की सहायता करता था। परगना स्तर पर आमिल राजस्व की देखभाल करता था। उसकी जिम्मेदारी सरकार स्तर के अमलगुजार के समक्ष थी। अपने क्षेत्र में संबंधित भूमि का लेखा-जोखा कानूनगो अपने पास रखता था। वह परगना में होने वाले विभिन्न फसलों का भी ब्यौरा रखता था।

गांव प्रशासन की सबसे निचली इकाई था। मुकदम गांव का मुखिया था जबकि पटवारी ग्राम स्तर पर राजस्व का लेखा-जोखा रखता था। मुगलों के शासनकाल में ग्रामीण प्रशासन का स्वरूप शेरशाह के शासन के सामान ही रहा।

7.9.3 थाना एवं थानादार

थाना एक ऐसी जगह थी जहाँ कानून और व्यवस्था की देखरेख के लिए सेना रहती थी। उन्हें सेना के लिए खानपान की वस्तुओं का भी इंतजाम करना पड़ता था। यह थाने मुख्य रूप से अशांत इलाकों और शहर के आसपास स्थापित किए गए थे। इसके प्रमुख को थानादार कहते थे। उसे सूबेदार और दीवान की अनुशंसा पर नियुक्त किया जाता था। वह आमतौर पर उस क्षेत्र के फौजदार के अधीन कार्य करता था।

7.10 नगर, किला और बंदरगाह प्रशासन

नगरों, किलों और बंदरगाहों के प्रशासन के लिए मुगलों ने अलग प्रशासनिक तंत्र की स्थापना की थी।

7.10.1 कोतवाल

शहरी केंद्रों के लिए सम्राट कोतवाल की नियुक्ति करता था जिसका मुख्य कारण शहर में रहने वाले लोगों के जान और माल की रक्षा करना था। उसकी तुलना आज के शहरों और नगरों के पुलिस अधिकारियों से की जा सकती है। कोतवाल शहर के बाहर जाने और अंदर आने वाले लोगों का ब्यौरा भी रखता था। बाहरी व्यक्तियों को शहर के अंदर आने और बाहर जाने के लिए उससे अनुमति लेनी पड़ती थी। कोतवाल को इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता था कि उसके इलाके में अवैध शराब न बन रही हो। वह व्यापारियों और दुकानदारों द्वारा प्रयुक्त माप और तोल के निरीक्षक के रूप में भी कार्य करता था।

7.10.2 किलादार

देश के विभिन्न क्षेत्रों में मुगल साम्राज्य के पास बड़ी संख्या में किले थे। इनमें से कई सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रों में बने हुए थे। प्रत्येक किला एक छोटा शहर होता था, जिसमें विशाल सेना रहती थी। प्रत्येक किले का एक प्रधान अधिकारी होता था, जिसे किलादार कहा जाता था। किलादार के रूप में नियुक्त व्यक्तियों पर सरसरी तौर पर निगाह डालने से यह स्पष्ट होता है कि आमतौर पर बड़े ओहदे वाले मनसबदारों को ही यह पद दिया जाता था। वह किले के आम प्रशासन और किलादार को दी गई जागीर में पड़ने वाले क्षेत्र का प्रभारी होता था। कभी-कभी किलादारों को उस क्षेत्र के फौजदार की भूमिका भी निभानी पड़ती थी।

7.10.3 बंदरगाह प्रशासन

मुगल शासक बंदरगाहों के आर्थिक महत्व को समझते थे क्योंकि ये गहन वाणिज्यिक गतिविधियों के केंद्र थे। बंदरगाह प्रशासन प्रांतीय प्राधिकार से स्वतंत्र होता था। बंदरगाह के गर्वनरों को मुतसद्दी कहते थे। इनकी नियुक्ति सीधे सम्राट करता था। कभी-कभी मुतसद्दी के पद की नीलामी होती थी और सबसे अधिक बोली लगाने वाले को यह पद दिया जाता था। मुतसद्दी व्यापारियों से कर वसूल करता था और सीमा शुल्क कार्यालय की देखरेख करता था। वह बंदरगाह की टकसाल का भी निरीक्षण करता था। शाहबंदर उसका मातहत था जो मुख्य रूप से सीमा शुल्क कार्यालय की देखरेख करता था।

7.11 मुगल शासन की प्रकृति

कुछ इतिहासकारों (इरफान हबीब, अतहर अली आदि) का मानना है कि मुगल प्रशासनिक ढांचा अधिक केंद्रीकृत था। यह केंद्रीकरण भू-राजस्व व्यवस्था की निपुण कार्यपद्धति मनसब और जागीर व्यवस्था तथा समान मुद्रा प्रचलन, आदि के रूप में परिलक्षित होता है। हालांकि स्टीफेन पी. ब्लेक और जे. एफ. रिचर्ड्स यह मानते हैं कि मुगल शासन में केंद्रीकरण की प्रवृत्ति थी, परंतु उनका विचार है कि मुगल साम्राज्य 'पितृसत्तात्मक नौकरशाही' (patrimonial-bureaucratic) थी।

उनके अनुसार सब कुछ शाही घराने और विशाल नौकरशाही के आसपास केंद्रित था। स्ट्रूयूसेंड के अनुसार केंद्रीकृत होने के बावजूद प्रशासनिक ढांचा अपने सीमावर्ती क्षेत्रों में कम केंद्रीकृत था। चेतन सिंह भी इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि 17वीं शताब्दी में भी मुगल साम्राज्य बहुत केंद्रीकृत नहीं था। उनके अनुसार जागीरदारी व्यवस्था की कुशल कार्यपद्धति के माध्यम से केंद्रीकृत ढांचे को बनाए रखना बहुत कारगर साबित नहीं हुआ। उनके अनुसार जागीरों के स्थानांतरण उतने प्रभावी नहीं थे, जितने परिलक्षित होते हैं बल्कि सीमांत प्रदेशों के प्रभावी तत्वों को केंद्र की नीतियों को प्रभावित करने में सफलता मिल जाती थी।

मुगल साम्राज्य व्यवहार में किस सीमा तक केंद्रीकृत था, यह एक विवाद का विषय है लेकिन सैद्धांतिक रूप से मुगल प्रशासनिक ढांचा अति केंद्रीकृत अधिकारीय तंत्र था। सम्राट सभी शक्तियों का स्रोत था और अधिकारी तंत्र बंदा-ए दरगाह (दरबार के दास) से ज्यादा कुछ नहीं था।

केंद्रीय विभागों के प्रमुखों के पास अपार शक्ति होने के बावजूद वह न तो एक दूसरे के कार्य-क्षेत्र में हस्तक्षेप और अनाधिकार प्रवेश कर सकते थे और न ही निरंकुश शक्ति ग्रहण कर सकते थे। निरीक्षण और संतुलन के जरिए मुगल शासक किसी भी मंत्री या पदाधिकारी को असीमित शक्ति प्रदान प्राप्त करने का अवसर नहीं देते थे।

बोध प्रश्न-3

1) निम्नलिखित पर टिप्पणी कीजिए:

क) दरोगा-ए डाक

ख) फौजदार

ग) कोतवाल

घ) दीवान-ए कुल

ड.) आमिल

2) मुगलों के अधीन वकील की स्थिति पर विचार-विमर्श कीजिए।

3) मुगल प्रशासनिक व्यवस्था के क्षेत्रीय उप-विभाजन का विवरण दीजिए।

7.12 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि दिल्ली सल्तनत का स्वरूप ऐतिहासिक रूप में विस्तृत इस्लामी विश्व का एक भाग होने से बना; साथ ही, आपने देखा 13वीं शताब्दी में अपनी आवश्यकताओं और परिस्थितियों के कारण इसका स्वरूप कैसे बदला और विकसित हुआ। आपने सल्तनत में

केंद्रीय, प्रांतीय और स्थानीय प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन भी किया। एक विशाल सेना रखने की आवश्यकता (सुरक्षा और राज्य विस्तार के लिए) तथा प्रशासनिक तंत्र रखने की जरूरत ने इसकी कई संस्थाओं को निश्चित स्वरूप प्रदान किया। अधिक केंद्रीकरण से प्रशासनिक नियंत्रण की प्रकृति में कई परिवर्तन आए।

मुगलों ने एक 'अति केंद्रीकृत नौकरशाही' व्यवस्था स्थापित करने की चेष्टा की जो 'प्रत्यक्ष' नियंत्रण पर आधारित थी। सम्राट में सभी शक्तियाँ निहित थीं। अपनी सहायता के लिए उसने केंद्रीय मंत्रियों का एक विशाल तंत्र निर्मित किया जिन्हें सम्राट स्वयं नियुक्त करता था। इसी प्रकार उन्हें नियंत्रण में रखने के लिए उसने निरीक्षण और संतुलन का सिद्धांत अपनाया।

प्रभावी प्रशासन के लिए साम्राज्य को *सूबों* (प्रांतों), *सरकारों*, *परगनों* और गांवों में विभक्त किया गया था। केंद्र की भांति ही प्रांतीय प्रशासन की व्यवस्था की जाती थी, जिसके लिए अलग से अधिकारियों को नियुक्त किया जाता था। यहाँ भी किसी अधिकारी को सर्वोच्च अधिकार प्राप्त नहीं थे। *सूबेदार* और *दीवान* दोनों स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे और वे केवल केंद्र के प्रति जिम्मेदार थे। नगरों और बंदरगाह शहरों का अलग प्रशासन-तंत्र था। नगरों में *कोतवाल* और बंदरगाह शहरों में *मुतसद्दी* आमतौर पर कानून और व्यवस्था की देख-रेख करते थे। मुगल प्रशासन में किलों का बहुत महत्व था जहाँ *किलादारों* की नियुक्ति की जाती थी। स्थानीय स्तर पर *परगना* सर्वप्रमुख प्रशासनिक इकाई था जबकि गांव प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी।

7.13 शब्दावली

अमीन	राजस्व का आकलन करने वाला
दीवान-ए विज़ारत	वित्त विभाग
खालिसा	'शाही सुरक्षित भूमि' जिसका राजस्व सुल्तान के खजाने में जमा होता था
खुतबा	शुक्रवार की नमाज़ के समय मस्जिद में पढ़ा जाने वाला धर्म उपदेश जिसमें शासक का नाम भी लिया जाता था
मुकद्दम	ग्राम प्रधान
मुक्ती या वली	इक्ता धारक या गवर्नर
मुशरिफ	राजस्व अधिकारी
मुतसरिफ	मुख्य लेखा-परीक्षक
पटवारी	गांव का लेखाकार
वक्फ	धार्मिक संस्थाओं के रखरखाव के लिए दिए जाने वाले भू-अनुदान
ज़वाबित	नियम अथवा अधिनियम

7.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

- 1) देखें भाग 7.2
- 2) देखें उप-भाग 7.4.2
- 3) देखें उप-भाग 7.4.5
- 4) देखें भाग 7.4

बोध प्रश्न-2

- 1) देखें भाग 7.5

2. देखें भाग 7.5 और 7.6
3. देखें भाग 7.6

बोध प्रश्न-3

- 1) देखें उप-भाग 7.7.3, 7.8.4, 7.9.1, 7.10.1
- 2) देखें उप-भाग 7.7.2
- 3) देखें भाग 7.9 और 7.10

7.15 संदर्भ ग्रंथ

हबीब, मोहम्मद एवं निजामी, के. ए., (संपादित)(1970) *कॉम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया: दिल्ली सल्तनत 1206-1526*, खंड V (दिल्ली: पीपल्स पब्लिशिंग हाउस).

हबीबुल्ला, ए.बी.एम., (1967) *द फाउंडेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया* (नई दिल्ली: सेंट्रल बुक डिपो).

हसन, इब्न, (1967) *द सेंट्रल स्ट्रक्चर ऑफ द मुगल एंपायर एंड इट्स प्रैक्टिकल वर्किंग अपटू द इयर 1657* (लाहौर: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

पांडे, अवध बिहारी, (1970) *अली मिडिल इंडिया* (इलाहाबाद: सेंट्रल बुक डिपो).

रे, अनिरुद्ध, (1984) *सम आसपैक्ट्स ऑफ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन* (लुधियाना: कल्याणी पब्लिशर्स).

सरन, पी., (1988) *द प्रोविंशियल गवर्नमेंट ऑफ द मुगल्स, 1526-1658* (जयपुर: सुनिता पब्लिकेशंस).

त्रिपाठी, आर.पी., (1959) *सम आसपैक्ट्स ऑफ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन* (इलाहाबाद: सेंट्रल बुक डिपो).

7.16 शैक्षणिक वीडियो

एस्टेब्लिशमेंट एंड कंसॉलिडेशन ऑफ द दिल्ली सल्तनत | इग्नू एस ओ एस एस
<https://www.youtube.com/watch?v=WCmtBgS1csM>

टॉकिंग हिस्ट्री |2| दिल्ली: द फाउंडेशन ऑफ दिल्ली सल्तनत | राज्यसभा टी वी
<https://www.youtube.com/watch?v=TJOsomraCaM>

टॉकिंग हिस्ट्री |4| दिल्ली: द ऐरा ऑफ अलाउद्दीन खलजी | राज्यसभा टी वी
<https://www.youtube.com/watch?v=PrTs0B1qQ9s>

इकाई 8 सैन्य संगठन और मनसब व्यवस्था*

इकाई की रूपरेखा

- 8.0 उद्देश्य
- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 दिल्ली सुल्तानों का सैन्य संगठन
- 8.3 मुगलों का सैन्य संगठन
- 8.4 मनसब व्यवस्था
 - 8.4.1 दोहरा पद: ज़ात और सवार
 - 8.4.2 मनसबदारों की तीन श्रेणियां
 - 8.4.3 मनसबदारों की नियुक्ति और पदोन्नति
 - 8.4.4 सेना का रख-रखाव और भुगतान
 - 8.4.5 अधिग्रहण (Escheat) व्यवस्था
 - 8.4.6 मनसबदारों का संघटन
- 8.5 सारांश
- 8.6 शब्दावली
- 8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 8.8 संदर्भ ग्रंथ
- 8.9 शैक्षणिक वीडियो

8.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम दिल्ली सुल्तानों तथा मुगलों के सैन्य संगठन तथा मनसब व्यवस्था पर विचार-विमर्श करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- दिल्ली सुल्तानों तथा मुगलों के सैन्य संगठन के बारे में जानेंगे,
- दीवान-ए अर्ज़ की कार्यप्रणाली को जान सकेंगे,
- मीर बख्शी की शक्तियों तथा अधिकारों को जान सकेंगे,
- अकबर के अधीन मनसब व्यवस्था की आधारभूत विशेषताओं को जान सकेंगे, और
- सत्रहवीं शताब्दी के दौरान मनसबदारी में हुए परिवर्तनों पर प्रकाश डाल सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

फतवा-ए जहांदारी में बरनी का दावा कि 'राजस्व सेना और सेना राजस्व' है स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि सेना साम्राज्य का स्तम्भ थी। कोई सुल्तान सेना में शिथिलता को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकता था। बलबन ने बुगरा खां को सलाह दी थी: 'सेना के लिए किसी खर्चे को बहुत अधिक नहीं मानो और अपने आरिज़ (सैन्य विभाग का प्रधान) को पुरानी सेना को बनाए रखने में और नई सेना को भर्ती करने में लगाए रखो और वह अपने को विभाग के प्रत्येक खर्चे के बारे में अवगत रखे' (निज़ामी, 1982: 287)। सल्तनत, भारत में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए

* प्रो. अनिरुद्ध रे, डिपार्टमेंट ऑफ हिस्ट्री एंड कल्चर, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, कोलकता; और प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। इस इकाई का मनसब संबंधी भाग हमारे पूर्ववर्ती पाठ्यक्रम ई.एच.आई-04: भारत: 16वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य तक, खंड 4, इकाई 15 से लिया गया है।

लगातार युद्धों में उलझी हुई थी जिसके लिए एक कुशल सेना का रख-रखाव अत्यन्त आवश्यक था। सुल्तान साथ ही साथ भारत में हो रहे मंगोल आक्रमणों के प्रति भी चिंतित और सर्तक थे जिसके लिए एक मजबूत रक्षा पंक्ति की आवश्यकता थी। इस प्रकार दिल्ली का कोई सुल्तान सुरक्षा और सेना के मामले में शिथिलता नहीं बरत सकता था। बलबन ने न केवल उत्तर-पश्चिमी सीमांत क्षेत्रों बल्कि काम्पली, पटियाली और भोजपुर में भी किले स्थापित किये। अलाउद्दीन ने भी न केवल सामरिक बिन्दुओं पर नये किलों का निर्माण कराया बल्कि पुराने किलों की मरम्मत भी करवाई। अलाउद्दीन ने ‘मंजनीक और अरादा के निर्माण का आदेश दिया... ताकि हर तरह के हथियार की आपूर्ति हो और साथ ही यह भी आदेश दिया कि किलों में अन्न और चारे के भंडार रखे जाएं’।

मुगल सेना सल्तनत सेना की अपेक्षा अधिक उन्नत, शायद ज्यादा संगठित और अच्छी तरह से सुसज्जित थी। इसकी एक अतिरिक्त विशेषता तोप और बंदूकों का इस्तेमाल थी। मुगल सेना का स्तम्भ *मनसब* व्यवस्था थी। प्रत्येक *मनसबदार* को सख्ती से एक विशिष्ट संख्या में घोड़े (*सवार*) तथा घुड़सवार रखने पड़ते थे और उन्हें नियमित रूप से हाजिरी के लिए पेश करना होता था। इस इकाई में, इसलिए एक अलग भाग मुगलों की *मनसब* व्यवस्था की कार्य प्रणाली पर समर्पित किया गया है।

8.2 दिल्ली सुल्तानों का सैन्य संगठन

मंगोल सैन्य संगठन की तरह दिल्ली के सुल्तानों ने भी अपनी सेना को उन्हीं के समान संगठित किया था। मंगोल सेना दस के गुणांक पर आधारित थी जिसे सामान्यतः सेना की दशमलव व्यवस्था/विभाजन के नाम से जाना जाता है। सबसे छोटा वर्ग सौ का था; दस हजार सेना (दस का गुणांक) का अध्यक्ष *तूमान* कहलाता था। अलाउद्दीन खलजी के अधीन *सरखैल* के तहत दस घुड़सवार होते थे; एक *सिपहसालार* के अतर्गत दस *सरखैल*; एक *अमीर* के तहत दस *सिपहसालार*; एक *मलिक* के तहत दस *अमीर*; और एक *खान* के तहत दस *मलिक* होते थे। सेना का नियंत्रण *खान* के हाथों में था।

इल्तुतमिश के सैन्य संगठन के बारे में हमें ज्यादा जानकारी नहीं है। हालांकि, ऐसा प्रतीत होता है कि उसने एक ‘स्थायी सेना’ संगठित की थी जिसमें ‘भर्ती केन्द्रीय रूप से होती थी; जिसका भुगतान केन्द्रीय रूप से होता था और जो केन्द्र द्वारा प्रशासित’ थी (निज़ामी, 1982)। बलबन ने सेना के महत्व को पहचाना और तदनुसार उसने *कल्ब-ए आला* (केन्द्रीय रूप से भर्ती की गई सेना) की ताकत को बढ़ाया। सेना की कुशलता को सुनिश्चित करने के लिए उसने नियमित सेना की नियमित परेड (*drill*) पर भी बल दिया। गुणवत्ता को सुनिश्चित करने के लिए उसने *दाग-ओ-चेहरा* (घोड़ों को दागना) शुरू किया ताकि कोई घोड़ा या घुड़सवार गिनती के लिए दुबारा ना आ जाए। गियासुद्दीन ने सख्ती से अलाउद्दीन की विवरणात्मक सूचियों (*descriptive rolls*; *हुलिया*, *चेहरा*) और *दाग* के नियमों को लागू किया। हालांकि, फिरोज़ शाह ने *दाग* और *हुलिया* की प्रथा को समाप्त कर दिया। सेना में कुलीनों द्वारा रखे जाने वाली सेना के साथ-साथ सुल्तान की स्थाई सेना (*हश्म-ए कल्ब*; दिल्ली स्थित/सुल्तान के साथ तैनात सेना) सम्मिलित थी। हालांकि, प्रांतीय मुख्यालयों में स्थित सेना को *हश्म-ए अतराफ* कहा जाता था। ‘13वीं शताब्दी में शाही घुड़सवार सेना को नगद वेतन के एवज में दिल्ली के समीप के छोटे गाँवों का राजस्व सौंपा जाता था जिन्हें मोरलैंड ने ‘छोटे इक्ते’ कहा है। इल्तुतमिश के तहत इस प्रकार की घुड़सवार सेना लगभग 3000 थी। बलबन ने इन सौंपे गये *इक्तों* को खत्म करने की कोशिश की जिससे भारी असन्तोष पैदा हुआ। अलाउद्दीन खलजी ऐसा करने में सफल रहा और उसने अपने सिपाहियों को नकद भुगतान करना शुरू किया। एक सैनिक को 234 *तनके* मिलते थे जबकि जो एक अतिरिक्त घोड़ा साथ लाता था उसे 78 *तनके* और अधिक मिलते थे। जो घुड़सवार दो घोड़े रखते थे उन्हें *दो-अस्या* और जो एक घोड़ा रखते थे उन्हें *यक-अस्या* कहा जाता था। फिरोज़ तुगलक ने शाही सैनिकों को नकद में भुगतान की प्रथा को त्याग दिया, इसकी बजाए वह उन्हें एक कागज, जिसे *इतलाक* कहते हैं, देने लगा। यह एक प्रकार का ऐसा दस्तावेज था जिसके बल पर वे सुल्तान के *खालिसा* (‘शाही’ या ‘आरक्षित भूमि’) के राजस्व अधिकारियों से अपने वेतन का दावा पेश कर सकते थे’ (कुरैशी 1971; किरण दत्तार, ई एच आई-03, इकाई

16, पृ. 8)। घुड़सवार सैनिक अक्सर दो तलवारें रखते थे (एक रकाब की तलवार जो काठी से बंधी रहती थी, दूसरी वह जो उनकी म्यान में रहती थी)। पैदल सैनिक कटार और तलवार के साथ-साथ धनुष-बाण से भी सुसज्जित रहते थे। पत्थर और मिसाइल फेंकने वाली मशीनों में मंजनीक, अरदा और मगरबी जैसी मशीनें थीं।

हाथी भी दिल्ली सुल्तानों की सेना के एक महत्वपूर्ण अंग थे। मुहम्मद बिन तुगलक के पास लगभग 3,000 हाथी थे। फिरोज़ के सैन्य दल में उसके दूसरे बंगाल अभियान के दौरान 470 हाथी थे। जब बलबन ने बुग़रा खां को बंगाल की जिम्मेदारी सौंपी तो उन्हें बंगाल से हाथियों को भेजने की सलाह दी। बरनी के अनुसार बलबन एक हाथी का मूल्य सौ घुड़सवारों के बराबर मानता था। वे सैनिकों को ले जाने में उपयोगी थे और फिरोज़ ने उन्हें ‘नदी के तीव्र बहाव से निपटने’ में उपयोगी बताया।

सल्तनत की पैदल सेना के सिपाही *पायक* कहलाते थे। वे अधिकांश हिन्दू या विनम्र मूल के थे। अधिकांशतः वे व्यक्तिगत सुरक्षा कर्मी या द्वारपाल के रूप में सेवाएँ देते थे। कुछ *पायकों* को घोड़े भी दिये जाते थे (*पायक बा अस्ये*)। सेना में *धानुक* (तीरअंदाज) भी थे। *जानदार* सुल्तान के व्यक्तिगत अंगरक्षक थे और वे सुल्तान के प्रत्यक्ष नियंत्रण में रहते थे। बलबन के पास 1000 अंगरक्षक थे और ऐसा कहा जाता है कि वह प्रत्येक को उनके नाम से जानता था। घुड़सवार और पैदल सैनिक सुल्तान की स्थायी सेना के भाग थे। हालाँकि कुछ ‘विशेष भर्ती’ वाले सैनिक भी थे जिन्हें केवल युद्ध के समय भर्ती किया जाता था। *पहलवान* और धावक (*शत्तार*) भी सैन्य दल के भाग थे।

दिल्ली सुल्तानों के तहत सैन्य विभाग विभिन्न नामों जैसे *दीवान-ए अर्ज*, *रावत-ए अर्ज* और *अर्ज-ए मुमालिक* के नाम से जाना जाता था। सल्तनत के शुरू के वर्षों में *वज़ीर* के पास नागरिक और सैन्य शक्तियाँ दोनों थीं। बलबन को इसके खतरे का अहसास हुआ और उसने *वज़ीर* की सैन्य शक्तियों को अलग कर दिया। उसके शासनकाल में सैन्य विभाग के प्रमुख *इमाद-उल मुल्क* थे। अलाउद्दीन ने सैन्य विभाग को और अधिक मजबूत और पुनर्संगठित किया। फिरोज़ तुगलक के तहत विभाग के अध्यक्ष उसके विश्वसनीय गुलाम बशीर इमाद-उल मुल्क थे। बरनी वर्णन करता है कि अपनी स्थिति को परिभाषित करते हुए इमाद-उल मुल्क ने कहा, “राजा सेना का मालिक है, मैं इसका प्रमुख हूँ और सेना राज्य की प्रजा की रक्षक” (हसन, 1980 [1936]: 212)। *दीवान-ए अर्ज* की सीधी पहुँच सुल्तान तक थी और वह उनसे कभी भी सीधे मिल सकता था। वह सेना की भर्ती और प्रशिक्षण के लिए और घोड़ों और सैनिकों के निरीक्षण और हाजिरी के लिए उत्तरदायी था।

8.3 मुगलों का सैन्य संगठन

मुगल सैन्य संगठन का अध्ययन दो विशिष्ट शीर्षकों के तहत किया जा सकता है। प्रथम, और सबसे महत्वपूर्ण, *मनसब* व्यवस्था थी जिसके माध्यम से मुगल नौकरशाही और, उससे कहीं अधिक, मुगल घुड़सवार सेना की भर्ती की जाती थी। और दूसरा पहलू मुगल सेना की घटक शाखाओं और सैन्य अभियानों और युद्धों को कैसे संगठित किया जाता था के विषय में था।

मुगलों ने मंगोल और बाद में दिल्ली सुल्तानों की तरह अपनी सेना को दशमलव व्यवस्था के तहत संगठित किया था। अक्सर *तूमान*/*तूमानदार* शब्द मुगलों के अन्तर्गत भी प्रचलन में बना रहा हालाँकि, प्रतीकात्मक रूप में ही। लेकिन मुगल सैन्य संगठन और दिल्ली सुल्तानों के सैन्य संगठन में प्रमुख अन्तर था कि मुगल सेना ‘प्रत्यक्ष कमान’ पर आधारित थी (अर्थात् पूरी सेना सीधे मुगल सम्राट के प्रति उत्तरदायी थी) जबकि दिल्ली सुल्तानों की सेना मंगोल सैन्य संगठन की तरह ‘अप्रत्यक्ष कमान’ पर आधारित थी।

मुगल सेना की घटक शाखाएँ

पैदल सेना, हाथी सेना, तोपखाना और नौ-सेना (जगदीश नारायण सरकार इसे नौ-वाहन विभाग (admiralty) कहना पसंद करते हैं) मुगल सेना की प्रमुख शक्तियाँ थीं। मुगल सेना का स्वरूप अधिकांशतः बहुजातीय था और इसमें ईरानी, तुर्क, अफगान और राजपूत शामिल थे।

पैदल सेना

मुगल सैन्य प्रशासन में मुगल पैदल सेना की स्थिति पदानुक्रम के अनुसार सबसे नीचे थी। पैदल सेना को *पियादगान/अहशाम* के नाम से जाना जाता था। *पियादगान* कई समूहों में गठित थे और विभिन्न किस्म की सेवाएँ प्रदान करते थे — भाला धारण करने वाले सिपाही से लेकर *बंदूकची*, तलवार चलाने वाले सिपाही (*शमशीरबाज़*), *दाखिली* (राज्य द्वारा भुगतान किये जाने वाले सैनिक), तीरंदाज और गैर-योद्धा भी — कुली (*दरबान*), *खिदमतिया* (सेवक; वे हिन्दू राजमार्ग 'ठग' जाति के थे और आमतौर पर वे गाइड के रूप में कार्य करते थे; तथा उनके लीडर *खिदमत राय* के नाम से जाने जाते थे), *हरकारे/संदेश वाहक* (*मेवड़ा*), पहलवान, धावक, पत्थर फेंकने वाले पालनी, गुलाम, पालकी ढोने वाले (*कहारे*), बढ़ई, लोहार, भिश्ती, आदि इसमें शामिल थे। उनमें *नीम-सवार* (अर्द्ध-सैनिक) भी थे, जिनकी स्थिति थोड़ा बेहतर थी।

हाथी

हाथी तीन कारणों से महत्वपूर्ण थे। वे भव्यता का प्रतीक थे और आमने-सामने होने वाले घमासान युद्ध में सेनापति/सम्राट अक्सर हाथियों पर बैठते थे ताकि वह दृष्टिगोचर रहें और अपनी सेना और शत्रु सेना की गतिविधियों पर एक चौकस नजर रख सकें। लेकिन हाथियों की तैनाती का इससे अधिक महत्वपूर्ण पहलू यह था कि वे बेहतरीन बोझा ढोने वाले जानवर थे और भारी तोपों के परिवहन, नदी पार करने और सेना के परिरक्षण के लिए महत्वपूर्ण थे। हालांकि कभी-कभी वे शत्रु के लिए कमजोर निशाने भी थे और उसके लिए हाथियों को ढाल और कवच पहनाए जाते थे। उनकी सूंड को धातु की प्लेटों से ढका जाता था और अक्सर उनकी सूंड पर एक तलवार और दो कटारें बाँधी जाती थीं जिससे वो शत्रु पर हमला कर सकें। यहाँ तक कि उन्होंने तीरंदाजों, बंदूकचियों और छोटी तोपों (*गजनाल*) के लिए बेहतर लक्ष्य साधने का आधार प्रदान किया।

सामान ढोने वाले हाथी और हरम की स्त्रियों को ले जाने वाले हाथियों को अक्सर पीछे रखा जाता था। हाथियों के अतिरिक्त ऊँटों, खच्चरों और बैलों को भी भारवाहक पशु के रूप में इस्तेमाल किया जाता था।

घुड़सवार सेना

फादर मॉनसरेट मुगल घुड़सवार सेना को 'सेना का पुष्प' कहते हैं। अहदी (भद्र सैनिक) सम्राट के व्यक्तिगत सैनिक थे जिनको अकबर ने संस्थापित किया था; जबकि *दाखिली* सैनिक, हालांकि सम्राट के नाम से भर्ती किये जाते थे पर वे *मनसबदारों* के साथ कार्यरत रहते थे। *दाखिली* दो तरह के थे — *बारगीर* जो हथियार और पोशाक राज्य से प्राप्त करते थे और *सिलेहदार* जो अपने स्वयं के छोड़े और हथियार लाते थे। *कुमकी* सैनिक भी थे जिन्हें विशेष कार्य के लिए भर्ती किया जाता था। लेकिन घुड़सवार सेना का बहुसंख्यक भाग *मनसबदारों* द्वारा प्रदत्त किये गये *ताबीनान* होते थे (*मनसबदारी* व्यवस्था के स्वरूप के बारे में अगले भाग में हम विस्तार से चर्चा करेंगे)। *मनसबदारों* को अपने घोड़े/घुड़सवार हाजिरी (*दाग-ओ-चेहरा*; घोड़ों को *दागने*, सैनिकों का *हुलिया* और *चेहरा* दर्ज कराने) के लिए (प्रत्येक 18 महीने बाद नकदी *मनसबदारों* के लिए और प्रत्येक 36 महीने बाद *जागीरदारों* के सैनिकों के लिए हाजिरी के लिए) लाने पड़ते थे। मुगल सेना में अधिकांशतः तुर्की, ताजिक और फारसी घोड़े थे।

तोपखाना

बाबर द्वारा पानीपत और खानवा की लड़ाइयों में भारी तोपखानों के इस्तेमाल पर काफी चर्चा की जाती रही है। हुमायूँ के पास बताया जाता है कि 21 भारी तोपें और 700 बन्दूकें थीं। शेरशाह का तोपखाना हुमायूँ से भी बेहतर माना जाता था। अकबर के तोपखानों में 150 तोपें थीं। अबुल फज़ल ने 'किलों की घेराबंदी और नौ-सैनिक कार्यवाही' के लिए तोपखाने के महत्व को बताया। तोपखाने के लिए मुगलों ने विदेशियों को वरीयता दी। बाबर के तोपखाने की कमान मशहूर ऑटोमन तुर्क, उस्ताद अली कुली और मुस्तफा खां के पास थी। हुमायूँ की तोपों का मालिक रूमी खान था; अकबर ने पुर्तगालियों पर भरोसा जताया और दारा ने वेनेशियन यात्री मानुची को तोपची के रूप में नियुक्त किया। दोनों भारी (*जिन्सी*) और हल्की (*दस्ती*) तोपें मुगल तोपखाने का हिस्सा थीं। भारी तोपों को जहान कुशा, किशवर कुशा और गढ़ भंजन जैसे नामों से विभूषित

किया गया था। मुगलों के पास तोप और बारूद के निर्माण के लिए पृथक कारखाने थे। शाहजहाँ और औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दू बक्सरिया (बक्सर से), बुंदेला, कर्नाटकी और बहेलिया (इलाहाबाद से) कुशल बंदूकची थे।

नौ-वाहन विभाग

मुगलों के बेड़े और जलमार्गों का ध्यान रखने के लिए मीर बहरी के अधीन एक अलग विभाग था। यह विभाग नौकाओं के निर्माण, समुद्र और नदी के बन्दरगाहों के विनियमन, सीमा-शुल्क लगाने और पुलों के निर्माण के लिए उत्तरदायी था। लेकिन मुगलों के पास एक अच्छी नौ-सेना का अभाव था। मुगलों ने पुर्तगालियों, और जंजीरा के सिद्धियों पर भरोसा किया लेकिन वे पुर्तगाली, डच और अंग्रेजों का सामना करने में असमर्थ थे।

अधिकारी-गण

सेना का प्रमुख सेनापति वास्तविकता में मुगल सम्राट था। हालांकि, सैन्य विभाग का प्रमुख बख्शी-ए मुमालिक या मीर बख्शी था। मनसब अनुदान के सभी आदेश उसके द्वारा जारी किये जाते थे। वह घोड़ों पर दाग लगाने की प्रक्रिया की निगरानी करता था और सैनिकों का निरीक्षण करता था। मुगल दरबार में वह दाहिने तरफ खड़ा होता था और अपने विभाग से जुड़े सभी मसले पेश करता था और यहाँ तक कि वह सम्राट के निजी कक्ष (गुसलखाना) तक भी उनके साथ जाता था। वह महल के रक्षकों का प्रभारी भी था। मीर बख्शी सैन्य अभियानों में भी सम्राट या शहजादों के साथ होता था या उसे विशिष्ट अभियान के लिए स्वतंत्र कमान भी सौंपी जा सकती थी। चूंकि वह प्रधान सेनापति नहीं था इसलिए अभियानों का नेतृत्व करने के लिए अधिकृत नहीं था और अधिकांश मामलों में अभियान के अलग बख्शी (बख्शी-ए असकर/लश्कर) नियुक्त किये जाते थे। वह सेना के वित्तीय मामलों का निपटारा करने का हकदार नहीं था इसके लिए उसे सम्बन्धित दीवान-ए तन को मसौदे (matters) पेश करने होते थे। हालांकि जब वह सक्रिय युद्ध भूमि में होता था तो वित्त का प्रभार उसके पास रहता था।

मुगल साम्राज्य में तीन बख्शी थे। उनकी जिम्मेदारियाँ कुल मिलाकर एक जैसी थीं, बस अंतर इतना था कि मीर बख्शी शहजादों और उच्च अमीरों से वास्ता रखता था; दूसरा बख्शी निचले दर्जे के मनसबदारों से संबंधित था; जबकि तीसरा बख्शी यौमियादारानों (वे जो नकद वेतन पाते थे) की वेतन वृद्धि और तैनातियों को देखता था। इसके अलावा एक बख्शी-ए अहदी भी था। बाद में जहाँगीर के अन्तर्गत एक अलग बख्शी-ए हुजूर, इन तीन बख्शियों से अलग, बनाया गया। हालांकि यह पद बाद के शासन कालों में जारी रहता नहीं दिखाई पड़ता। इसके अलावा हम जहाँगीर के दौरान एक और बख्शी, बख्शी-ए-शार्गिद पेशा (घरेलू नौकर-चाकर) भी पाते हैं। यह पद शाहजहाँ के समय में भी जारी रहा। मुगल तोपखाने का प्रभारी मीर आतिश था।

बोध प्रश्न-1

- 1) दीवान-ए अर्ज के कार्यालय के कर्तव्यों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

- 2) मुगल सेना की घटक शाखाओं की संक्षेप में चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

- 3) मुगल सेना के अधिकारियों पर संक्षेप में लिखिए।

.....

.....

.....

8.4 मनसब व्यवस्था

मुगल काल में मनसब व्यवस्था अचानक ही नहीं विकसित हुई थी बल्कि यह धीरे-धीरे समय के साथ विकसित हुई। ये संस्थाएं अंशतः पश्चिम एशिया से ली गयी थीं और उन्हें भारतीय परिवेश के अनुसार परिष्कृत किया गया तथा ढाला गया। *मनसबदार* मुगल शासक वर्ग का अभिन्न हिस्सा थे और वे, जैसा कि पर्सिवल स्पियर कहते हैं, 'कुलीनों के कुलीन' थे। वे न्याय विभाग को छोड़कर सभी प्रशासनिक विभागों में नियुक्त किये जाते थे। वे *वज़ीर*, *बख्शी*, *फौजदार* तथा *सूबेदार* के महत्वपूर्ण पद धारण करते थे।

मनसब शब्द का अर्थ स्थान या पद है और इस प्रकार यह मुगलों की *मनसब* व्यवस्था में ओहदा या पद को इंगित करता है। बाबर के समय में पदाधिकारियों के लिए *मनसबदार* शब्दावली का उपयोग नहीं होता था, इसके स्थान पर एक दूसरी शब्दावली *वजहदार* का उपयोग होता था। यह बाबर के बाद मुगलों के अधीन विकसित *मनसब* व्यवस्था से कुछ मामलों में अलग था।

अकबर द्वारा अपने सैनिक और नागरिक अधिकारियों को उनकी योग्यता या राज्य के लिए की गयी सेवाओं के आधार पर *मनसब* प्रदान की गई। अधिकारियों का स्तर निर्धारित करने और अपने सैनिकों को वर्गीकृत करने के लिए वह मोटे तौर पर चंगेज खां के सिद्धांतों से प्रेरित था। जैसा कि हम देख चुके हैं कि चंगेज खां की सेना दशमलव व्यवस्था के आधार पर संगठित थी। सबसे छोटी इकाई में दस घुड़सवार शामिल होते थे, उसके बाद एक सौ, एक हजार और इसी प्रकार संख्या बढ़ती जाती थी। अबुल फज़ल बताते हैं कि अकबर ने *मनसबदारों* की 66 श्रेणियाँ बनाई थीं जिसमें 10 घुड़सवारों से लेकर 10,000 घुड़सवारों तक के सेनानायक शामिल थे। पर अबुल फज़ल ने केवल 33 श्रेणियों का ही उल्लेख किया है।

मनसब तीन चीजों को लक्षित करता था:

- क) इससे इसके धारक (*मनसबदार*) की पदानुक्रम में अवस्थिति निर्धारित होती थी।
- ख) इससे धारक का वेतन निश्चित होता था।
- ग) इससे धारक द्वारा एक खास संख्या में सेना, घोड़े और हथियार रखे जाने का भी निर्धारण होता था।

8.4.1 दोहरा पद: ज़ात और सवार

आरंभ में *मनसबदार* का पद, व्यक्तिगत वेतन, और उसकी सेना का आकार एक संख्या द्वारा ही घोषित होता था। इस स्थिति में अगर कोई व्यक्ति 500 की *मनसब* प्राप्त करता था तो उसे 500 सैनिक रखने पड़ते थे और उसे इस सेना के रख-रखाव के लिए भत्ता दिया जाता था। इसके अतिरिक्त, अनुसूची के अनुसार उन्हें व्यक्तिगत वेतन प्राप्त होता था और अपने पद के अनुरूप उन्हें कुछ खास जिम्मेदारियाँ भी निभानी पड़ती थीं। कुछ समय बाद *मनसबदार* का पद एक की जगह दो संख्याओं *ज़ात* और *सवार* द्वारा घोषित किया जाने लगा। यह शुरुआत संभवतः 1595-96 में हुई।

पहली संख्या (*ज़ात*) से *मनसबदार* का व्यक्तिगत वेतन (*तलब-ए खासा*) और पदानुक्रम में उसकी हैसियत और स्थान निर्धारित होता था। दूसरी संख्या (*सवार*) से *मनसबदार* द्वारा रखे जाने वाले घोड़ों और घुड़सवारों की संख्या तय होती थी और उसकी सेना (*ताबीनान*) के रख-रखाव के लिए देय राशि तय की जाती थी।

इस दोहरे पद की भूमिका को लेकर कुछ विवाद है। विलियम इरविन का मानना है कि दोहरे पद का अर्थ यह है कि *मनसबदारों* को अपने व्यक्तिगत वेतन से सेना के दो दलों का रख-रखाव करना पड़ता था। अब्दुल अज़ीज़ के विचार आधुनिक विचार से मेल खाते हैं, उनका मानना है कि *ज़ात* वेतन शुद्धतः व्यक्तिगत वेतन था और सेना के रख-रखाव से इसका कोई वास्ता नहीं था। उन्होंने इरविन के सिद्धांत का खंडन करते हुए कहा है कि इसमें केवल एक सैन्य दल का रख-रखाव करना होता था, दो का नहीं। अतहर अली ने स्थिति को पूरी तरह सही परिप्रेक्ष्य में रखा, उनका कहना है कि पहली संख्या (*ज़ात*) से राज्य के पदाधिकारियों के पदानुक्रम में *मनसबदारों*

की अवस्थिति और मनसबदारों का वेतन तय होता था। दूसरे पद (सवार) से मनसबदार द्वारा रखे जाने वाले घोड़ों और घुड़सवारों की संख्या तय होती थी।

8.4.2 मनसबदारों की तीन श्रेणियाँ

1595-96 में मनसबदारों को तीन समूहों में वर्गीकृत किया गया:

- क) जिनके घुड़सवारों (सवार) की संख्या ज़ात के बराबर होती थी प्रथम श्रेणी के मनसबदार माने जाते थे।
- ख) जिनके पास ज़ात की संख्या के आधे या आधे से अधिक घुड़सवार होते थे। वे द्वितीय श्रेणी के, तथा
- ग) जिनके घुड़सवारों की संख्या उनकी ज़ात संख्या के आधे से कम होती थी तीसरी श्रेणी के मनसबदार होते थे।

सवार पद ज़ात के बराबर या उससे कम होता था। यहां तक कि अगर सवार पद बड़ा भी होता था तो पदानुक्रम में मनसबदार की स्थिति पर फर्क नहीं पड़ता था। उदाहरण के लिए, 4000 ज़ात और 2000 सवार (संक्षेप में 4000/2000) ओहदे का मनसबदार 3000/3000 के मनसबदार से पद में वरिष्ठ होगा, बाद वाले मनसबदार के पास घुड़सवारों की संख्या अधिक है पर इससे पहले वाले मनसबदार के पदानुक्रम पर फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि उसका ज़ात पद बड़ा है।

पर मनसबदार जब कठिन क्षेत्र में विद्रोहियों के बीच कार्यरत होता था तो कई बार इस नियम का पालन नहीं भी किया जाता था। इन मामलों में राज्य ज़ात पद को बिना बदले हुए सवार पद बढ़ा देता था। निश्चित रूप से यह एक लचीली व्यवस्था थी और इसमें परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होता रहता था। इस प्रकार आधारभूत ढांचे को बदले बिना इसमें सुधार व परिवर्तन होते रहते थे। सर्शत पद (मशरूत) का चलन इसी प्रकार का सुधार था, जिसमें कुछ समय के लिए सवार पद बढ़ा दिया जाता था। यह कार्य संकटकालीन स्थिति में किया जाता था। जिसके तहत राज्य के खर्च पर अधिक घुड़सवारों को भर्ती करने की अनुमति प्रदान की जाती थी।

जहांगीर ने अपने शासन में दो अस्पा सिंह अस्पा व्यवस्था लागू कर एक नया परिवर्तन किया। जहांगीर के शासन के दसवें वर्ष में यह पद सबसे पहले महाबत खां को प्राप्त हुआ। इसके अनुसार, मनसबदार का आधा या पूरा सवार पद दो अस्पा सिंह अस्पा बना दिया गया। उदाहरण के लिए, यदि एक मनसबदार के पास 4000 ज़ात/4000 सवार का मनसब हो तो उसे हुमा दो अस्पा सिंह अस्पा (सभी दो-तीन घोड़ों) प्रदान किया जाता था। इस मामले में मूल सवार पद को नज़रअंदाज कर मनसबदार को दो अस्पा सिंह अस्पा या दोगनी संख्या (यहां 4000+4000 = 8000) में सैनिक और घोड़े रखने की अनुमति दी जा सकती थी। फिर यदि 4000 ज़ात 4000 सवार का पद हो जिसमें से 2000 दो अस्पा सिंह अस्पा हो, इसका मतलब यह होता था कि मूल 4000 सवार पद में से केवल 2000 साधारण या बरावर्दी सैनिक होंगे और 2000 दो अस्पा सिंह अस्पा के जरिए इस संख्या का दोगुना अर्थात् 4000 सैनिक प्राप्त होंगे। इस प्रकार कुल घुड़सवारों की संख्या 6000 होगी।

दो अस्पा सिंह अस्पा व्यवस्था अपनाने के पीछे क्या कारण हो सकते थे? इस मामले में हमारे स्रोत कोई मदद नहीं करते, पर इस संदर्भ में हम कुछ अनुमान लगा सकते हैं: सम्राट बनने के बाद जहांगीर अपने विश्वासपात्र कुलीनों की पदोन्नति करना चाहता था और उन्हें सैनिक दृष्टि से मजबूत करना चाहता था, पर इसमें कुछ व्यावहारिक समस्याएँ थीं। जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा कि आमतौर पर सवार पद ज़ात पद से बड़ा नहीं हो सकता था। इस स्थिति में, सवार पद बढ़ाने के लिए ज़ात पद को भी बढ़ाना पड़ता। ज़ात पद में बढ़ोतरी करने से व्यक्तिगत वेतन के रूप में अतिरिक्त भुगतान करना पड़ता और इससे राजकोष पर बोझ बढ़ता। इसके अलावा पदानुक्रम में कुछ कुलीनों को आगे बढ़ाना पड़ता जिससे अन्य कुलीनों में ईर्ष्या का भाव पैदा होता।

वस्तुतः दो अस्पा सिंह अस्पा ऐसा तरीका था जिसके माध्यम से ज़ात पद या मनसब पदानुक्रम को छेड़े बिना अतिरिक्त सवार पद प्रदान किया जा सकता था। इसके माध्यम से ज़ात पद में बढ़ोतरी न करने से राज्य के खर्च में भी बचत होती थी।

8.4.3 मनसबदारों की नियुक्ति और पदोन्नति

आमतौर पर मीर बख्शी सम्राट के सामने प्रत्याशियों को उपस्थित करता था जिन्हें सम्राट स्वयं नियुक्त करता था। नियुक्ति के लिए आमतौर पर प्रतिष्ठित कुलीनों और प्रांतों के गवर्नरों की अनुशंसाओं को आमतौर पर स्वीकार किया जाता था। नियुक्ति के लिए बृहत प्रक्रिया अपनायी जाती थी जिसमें दीवान, बख्शी और अन्य लोग शामिल होते थे, इसके बाद सम्राट के पास नियुक्ति के लिए नाम भेजा जाता था। नियुक्ति के बाद वज़ीर की मुहर लगा फरमान जारी किया जाता था। पदोन्नति के मामले में भी यही प्रक्रिया अपनायी जाती थी।

मनसब प्रदान करना सम्राट का विशेषाधिकार था। वह किसी भी व्यक्ति को मनसबदार के रूप में नियुक्त कर सकता था। चीन के समान यहां किसी लिखित परीक्षा की व्यवस्था नहीं थी। आमतौर पर कुछ नियमों का पालन किया जाता था। मुगल सम्राटों के शासन कालों में नियुक्त मनसबदारों का सर्वेक्षण करने पर पता चलता है कि अन्य की तुलना में कुछ समूहों को वरीयता दी जाती थी।

पहले से मनसबदार के रूप में कार्य कर रहे व्यक्तियों के पुत्रों और नजदीकी रिश्तेदारों को प्राथमिकता दी जाती थी। इस समूह को खानज़ाद के नाम से जाना जाता था। इसके बाद दूसरे राज्यों में बड़े पदों पर कार्यरत लोगों को वरीयता दी जाती थी। ऐसे लोगों में उज़बेक और सफवी साम्राज्यों और दक्खन राज्यों से आने वाले प्रमुख थे। इसमें ईरानी, तूरानी, इराकी और खुरासानी शामिल थे। मुगल मनसब का आकर्षण इतना जबरदस्त था कि 1636 में बीजापुर के आदिल शाह ने मुगल सम्राट से अनुरोध किया था कि उसके कुलीनों के बीच से मनसबदार न नियुक्त किए जाएँ।

नियुक्ति और पदोन्नति में स्वायत्त राज्यों के राजाओं को भी प्राथमिकता दी गयी। इस श्रेणी में लाभ मुख्य रूप से राजपूत राजाओं को मिला।

आमतौर पर कार्यकुशलता और वंश के आधार पर पदोन्नति की जाती थी। औरंगजेब के शासनकाल के अंतिम वर्षों में मानुची ने लिखा है कि “हज़ारी या एक हज़ार का वेतन पाने के लिए काफी इंतज़ार और काफी मेहनत करनी पड़ती थी। सम्राट इसे प्रदान करने में काफी मितव्ययिता से काम करता था और यह पद उन्हीं को दिया जाता था जो अपनी सेवा और कार्यकुशलता के बल पर इसे प्राप्त करने की योग्यता रखते थे। अगर किसी को इस पद के समकक्ष वेतन दिया जाता था तो वे उसे उमरा या अमीर की पदवी भी देते, जिसका अर्थ कुलीन था”। लेकिन व्यावहारिक तौर पर पदोन्नति में प्रजातीय आधार की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। अटल निष्ठा को भी विशेष महत्व दिया जाता था।

बोध प्रश्न-2

- 1) ज़ात और सवार पद को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

- 2) मनसबदारों की तीन श्रेणियाँ क्या थीं?

.....

.....

.....

.....

8.4.4 सेना का रख-रखाव और भुगतान

मनसबदारों को अपनी सेना का नियमित निरीक्षण और शारीरिक सत्यापन कराना पड़ता था। यह कार्य मीर बख्शी का विभाग संपन्न करता था। इसके लिए विशेष कार्य प्रणाली अपनायी जाती थी। इसे दाग-ओ-चेहरा के नाम से जाना जाता था। जब कोई एक कुलीन अपने घोड़ों को प्रस्तुत

करता था तो उन घोड़ों को एक मुहर (दाग) द्वारा खास तरीके से चिह्नित कर दिया जाता था ताकि दूसरे कुलीनों के घोड़ों से उन्हें अलग किया जा सके। सैनिकों का शारीरिक ब्यौरा और पहचान चिह्न (चेहरा) भी दर्ज किया जाता था। इस प्रकार एक ही घोड़े या सैनिक को दोबारा निरीक्षण के लिए प्रस्तुत करने की संभावना काफी कम हो जाती थी। इसका सख्ती से पालन होता था। कई ऐसे मामलों की भी जानकारी मिलती है जिसमें निश्चित संख्या में सेना न रखने के कारण पदावनति भी कर दी जाती थी। अब्दुल हमीद लाहौरी ने अपनी पुस्तक *बादशाहनामा* में लिखा है कि शाहजहां के शासनकाल में अगर एक *मनसबदार* अपनी *जागीर* में ही कार्यभार संभाल रहा होता था तो उसे अपने *सवार* पद की एक तिहाई सेना जुटानी पड़ती थी। *जागीर* से बाहर कार्यरत रहने की स्थिति में उसे एक चौथाई सेना जुटानी पड़ती थी। बल्ख और समरकंद में रहने पर यह अनुपात $\frac{1}{5}$ हो जाता था।

ज़ात पद के आधार पर वेतन निश्चित होता था, पर इनके बीच कोई गणितीय या आनुपातिक संबंध नहीं था। दूसरे शब्दों में, वेतन एक ही अनुपात में ज्यादा या कम नहीं होता था।

नीचे दी गयी तालिका में अकबर के शासनकाल में *ज़ात* पद के लिए प्रति महीने वेतन का नमूना प्रस्तुत किया गया है (कृपया ध्यान रखिए कि अकबर के शासनकाल में 5000 से ऊपर का *ज़ात* पद केवल राजकुमारों को दिया जाता था। अकबर के शासनकाल के अंतिम वर्षों में राजा मान सिंह अकेला कुलीन था जिसे 7000 *ज़ात* का पद प्राप्त था)।

ज़ात पद का वेतन

<i>ज़ात</i> पद	श्रेणी-I (रुपये)	श्रेणी-II (रुपये)	श्रेणी-III (रुपये)
7000	45,000	—	—
5000	30,000	29,000	28,000
4000	22,000	21,800	21,600
3000	17,000	16,800	16,700
2000	12,000	11,900	11,800
1000	8,200	8,100	8,000

सवार पद की संख्या कुछ भी हो, प्रत्येक सैनिक के वेतन का कुल योग ही *सवार* पद का वेतन होता था। सैनिकों को दिया जाने वाला वेतन निश्चित और सभी जगह एक प्रकार का था। अकबर के शासनकाल में कई बातों से वेतन दर निश्चित होती थी, जैसे प्रति घुड़सवार घोड़ों की संख्या (*दाग* के लिए प्रस्तुत), घोड़ों की नस्ल आदि। यह दर 25 रुपये से लेकर 15 रुपये प्रतिमाह के बीच निर्धारित की जाती थी।

मासिक वेतन (Month Scale)

आमतौर पर *मनसबदारों* को राजस्व आवंटन (*जागीर*; *जागीर* पर विस्तार के लिए **इकाई 9** देखें) के जरिए भुगतान किया जाता था। इसमें सबसे बड़ी समस्या यह थी कि एक वर्ष में *जागीर* की अनुमानित आय (*जमा*) के आधार पर आकलन किया जाता था। यह पाया जाता था कि वास्तविक राजस्व वसूली (*हासिल*) अनुमानित आय से हमेशा कम होती थी। इस स्थिति में मासिक वेतन की पद्धति से *मनसबदारों* को वेतन तय किया जाता था। उदाहरण के लिए, अगर *जागीर* की वास्तविक आय जमा की आधी होती थी तो इसे *शशमाहा* (छमाही) कहते थे। अगर आय एक चौथाई होती थी तो इसे *सिहमाहा* (तिमाही) माना जाता था। नगद भुगतान में भी मासिक वेतन पद्धति लागू होती थी।

निर्धारित वेतन से कटौती का भी प्रावधान था। सबसे ज्यादा कटौती दखनियों से की जाती थी जिनके वेतन का एक चौथाई (*चौथाई*) हिस्सा काट लिया जाता था। इसके अतिरिक्त सम्राट के मवेशियों के चारे के खर्च के लिए *खुराक दवाब* नामक कटौती भी की जाती थी। *नकद* वेतन प्राप्त करने वाले से एक रुपये में दो दाम (*दोदामी*) काट लिया जाता था। इसके अलावा विभिन्न कारणों से *जुर्माना* भी वसूला जाता था। वेतन में इस प्रकार की कटौतियों से कुलीनों का वेतन निश्चित रूप से कम हो जाता था।

साम्राज्य के कुल राजस्व स्रोतों का 80 प्रतिशत मात्र 1,571 *मनसबदारों* द्वारा उपयोग में लाया जाता था। इससे पता चलता है कि *मनसबदार* कितने शक्तिशाली थे।

8.4.5 अधिग्रहण (Escheat) व्यवस्था

कई समकालीन विवरणों में (खासकर यूरोपीय यात्रियों के) इस प्रथा का जिक्र मिलता है कि कुलीन की मृत्यु के बाद सम्राट उसकी संपदा अधिगृहीत कर लेता था। इसे अधिग्रहण (*ज़ब्त*) के नाम से जाना जाता था। इसका कारण था कि अक्सर कुलीन राज्य से कर्ज लिया करते थे जिनका उनकी मृत्यु तक भुगतान नहीं हो पाता था। कुलीनों की संपत्ति के अधिग्रहण और राज्य की मांग (*मुतालबा*) में समायोजन तथा बची हुई संपत्ति का उसके उत्तराधिकारियों में बंटवारे का काम *खान-ए सामां* (देखिए **इकाई 7**) किया करता था। कभी-कभी सम्राट स्वयं, इस्लामी उत्तराधिकार कानून की परवाह न करते हुए संपत्ति का बंटवारा अपनी इच्छानुसार उत्तराधिकारियों के बीच कर देता था। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश मामलों में सम्राट की इच्छा ही सर्वोपरि होती थी। कभी-कभी राज्य पूरी संपत्ति की *जब्ती* पर जोर देता था। 1666 में औरंगजेब ने *फरमान* जारी किया कि उत्तराधिकारविहीन कुलीन की मृत्यु के बाद उसकी सारी संपत्ति राज्य कोष में जमा करवानी होगी। 1691 के *फरमान* द्वारा इसकी पुष्टि की गयी जिसमें अधिकारियों को उन कुलीनों की संपत्ति *जब्त* न करने का आदेश दिया गया जिनके उत्तराधिकारी राज्य सेवा में कार्यरत थे क्योंकि उनसे *मुतालबा* के भुगतान के लिए कहा जा सकता था।

8.4.6 *मनसबदारों* का संघटन

सैद्धांतिक रूप में *मनसबदारी* का द्वार सबके लिए खुला हुआ था, पर व्यावहारिक तौर पर मुगल सम्राट व्यक्ति के वंश को काफी महत्व देते थे। ऐसा लगता है कि *खानज़ादों* (*मनसबदारों* के सेवारत संबंधी या उत्तराधिकारी) को प्राथमिकता मिलती थी। औरंगजेब के शासनकाल में 1000 और उसके ऊपर वाले 575 *मनसबदारों* में से 272 (लगभग 47 प्रतिशत) *खानज़ाद* थे। *खानज़ादों* के अतिरिक्त *ज़मींदारों* (स्वायत्त सरदारों) को भी *मनसबदार* नियुक्त किया जाता था। 1707 में 575 *मनसबदारों* में 8 प्रतिशत *ज़मींदार* थे। मुगलों ने *मनसबदारी* में ईरानी, चग़ताई, उज़्बेकों के साथ-साथ दक्खिनियों का भी स्वागत किया। कुछ प्रजातीय समूहों की स्थिति काफी मजबूत थी। इनमें तूरानी (मध्य एशियाई), ईरानी, अफगान, भारतीय मुसलमान (शेखज़ादे), राजपूत, मराठा और दक्खनी प्रमुख हैं। इनमें से अंतिम दो समूहों की नियुक्ति औरंगजेब के शासनकाल में बड़े पैमाने पर हुई थी। ये नियुक्तियाँ फौजी कारणों से प्रेरित थीं।

बोध प्रश्न-3

1) मासिक वेतन से क्या तात्पर्य था?

.....

.....

.....

2) दो अस्पा सिंह अस्पा व्यवस्था क्यों अपनायी गयी?

.....

.....

.....

3) अधिग्रहण व्यवस्था से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

8.5 सारांश

दिल्ली सुल्तानों के पास एक 'स्थायी सेना' थी जिसकी भर्ती और भुगतान केन्द्रीय तौर पर किया जाता था। सल्तनत का सैन्य संगठन मंगोल सैन्य संगठन से अत्यधिक प्रभावित था और यह 'अप्रत्यक्ष कमान' पर आधारित था। मुगल सैन्य संगठन भी दशमलव प्रणाली से प्रभावित था, हालांकि यह 'प्रत्यक्ष कमान' पर आधारित था। मुगल सैन्य संगठन में सबसे बुनियादी बात मुगल मनसब व्यवस्था थी। मनसबदारी और जागीरदारी मुगल साम्राज्य की दो प्रमुख संस्थाएँ थीं। नागरिक और सैनिक दोनों तरह के प्रशासन में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण थी। केन्द्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था के साथ-साथ बड़ी फौज खड़ी करने के लिए यह व्यवस्था विकसित की गयी। और उनकी बड़ी फौज की सहायता से साम्राज्य का विस्तार किया जाता था और कार्यकुशलता से इसे संचालित किया जाता था। मनसब व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

- मनसबदारों को ज़ात और सवार का दोहरा पद प्राप्त होता था। ज़ात से प्रशासनिक पदानुक्रम में अधिकारी की हैसियत का पता चलता था और इससे उनका व्यक्तिगत वेतन भी निर्धारित होता था। सवार उनके द्वारा रखी जाने वाली सेना को इंगित करता था।
- ज़ात और सवार संख्या के अनुपात के आधार पर मनसबदारों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जाता था।
- मनसबदारों के वेतन और उनके द्वारा सेना के रख-रखाव के लिए निश्चित नियम निर्धारित किए गए थे। इन नियमों में आवश्यकतानुसार समय-समय पर परिवर्तन होते रहे।

भू-राजस्व व्यवस्था के प्रबंध के लिए सारी भूमि को जागीर और खालिसा में विभक्त कर दिया गया था। खालिसा से प्राप्त राजस्व राजकीय कोष तथा जागीर से प्राप्त राजस्व मनसबदारों को प्राप्त होता था। मनसबदारों को जागीरों के आवंटन द्वारा भुगतान किया जाता था।

8.6 शब्दावली

बराबर्दी	अकबर के शासनकाल में सेना के रख-रखाव के लिए मनसबदारों को दिए जाने वाले अग्रिम वेतन को बराबर्दी कहते थे। जहांगीर के शासनकाल से सेना के रख-रखाव के लिए कुलीनों को दिए जाने वाले नियमित भुगतान के लिए इसका उपयोग किया जाने लगा
खानज़ाद	कुलीन के पद पर पहले से कार्य कर रहे व्यक्तियों के पुत्र और नजदीकी संबंधी
खुराक-दव्वाब	मवेशियों के लिए चारा-भत्ता
मशरूत	कुलीनों को दिया जाने वाला सशर्त पद
तलब-खासा	कुलीनों का निजी वेतन
ताबीनान	कुलीनों द्वारा रखी गयी सेना
उमरा	अमीर का बहुवचन अर्थात् कुलीन

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

- 1) देखें भाग 8.2
- 2) देखें भाग 8.3
- 3) देखें भाग 8.3

बोध प्रश्न-2

- 1) ज़ात मनसबदार के व्यक्तिगत वेतन का द्योतक था जबकि सवार उनके द्वारा रखी गयी सेना की ओर इशारा करता था। देखिए उप-भाग 8.4.1
- 2) ज़ात और सवार पद के आधार पर मनसबदारों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया था। देखें उप-भाग 8.4.2

बोध प्रश्न-3

- 1) मनसबदार की अनुमानित आय और वास्तविक आय (मनसबदार द्वारा वसूला गया राजस्व) के अंतर को पाटने के लिए मासिक वेतन की व्यवस्था की गयी थी। देखें उप-भाग 8.4.4
- 2) ज़ात पद में परिवर्तन किए बिना मनसबदारों के सवार पद में वृद्धि करने के लिए यह व्यवस्था की गयी थी। देखिए उप-भाग 8.4.4
- 3) अधिग्रहण के सिद्धांत के द्वारा मुगल शासक मृत कुलीनों की संपदा ज़ब्त कर लेते थे। विस्तार के लिए देखिए उप-भाग 8.4.5

8.8 संदर्भ ग्रंथ

अली, अतहर, (1968) *मुगल नोबिलिटी अंडर औरंगज़ेब* (बॉम्बे: एशिया पब्लिशिंग हाउस).

डे, यू. एन., (1970) *मुगल गवर्मेंट, 1556-1707* (नई दिल्ली: कुमार ब्रदर्स).

हबीब, मोहम्मद एवं के. ए. निज़ामी, (1982) *कॉम्प्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग V* (दिल्ली: पीपल्स पब्लिशिंग हाउस).

हसन, इब्न, (1980 [1936,]) *सेंट्रल स्ट्रक्चर ऑफ द मुगल एम्पायर* (ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

कुरैशी, इश्तियाक हुसैन, (1971) *द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द सल्तनत ऑफ देहली* (नई दिल्ली: मुंशीराम मनोहरलाल, ओरिएंटल बुक रीप्रिंट).

रे, अनिरुद्ध, (1984) *सम आस्पैक्ट्स ऑफ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन* (कलकता: कल्याणी पब्लिशर्स).

रेचौधरी, तपन एवं इरफान हबीब, (1982) *द न्यू कैम्ब्रिज इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग I* (नई दिल्ली: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

सरन, पी., (1941) *द प्रोविशियल एडमिनिस्ट्रेशन अंडर द मुगल्स [1526-1658]* (इलाहाबाद: किताबिस्तान).

सरकार, जगदीश नारायण, (1984) *मुगल पॉलिटी* (दिल्ली: इदारात-ए अदबियात-ए दिल्ली).

त्रिपाठी, आर. पी., (1985) *राइज़ एंड फाल ऑफ द मुगल एम्पायर* (इलाहाबाद: सेंट्रल बुक डिपो).

8.9 शैक्षणिक वीडियो

मनसबदारी सिस्टम-I

<https://www.youtube.com/watch?v=kpQX7Ke8nAQ>

मनसबदारी सिस्टम-II

https://www.youtube.com/watch?v=TqbJCUJi_Ak

इकाई 9 इक्ता और जागीर*

इकाई की रूपरेखा

- 9.0 उद्देश्य
- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 इक्ता व्यवस्था
 - 9.2.1 इक्ता क्या थे?
 - 9.2.2 इक्ता व्यवस्था का संचालन
 - 9.2.3 इक्ता और शासक वर्ग में संसाधनों का वितरण
- 9.3 जागीर व्यवस्था
 - 9.3.1 आरंभिक चरण
 - 9.3.2 जागीर व्यवस्था का संगठन
 - 9.3.3 जागीरों के विभिन्न प्रकार
 - 9.3.4 जागीरों का प्रबंधन
- 9.4 सारांश
- 9.5 शब्दावली
- 9.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 9.7 संदर्भ ग्रंथ
- 9.8 शैक्षणिक वीडियो

9.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम *इक्ता* और *जागीर* व्यवस्थाओं पर विचार-विमर्श करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- दिल्ली सुल्तानों के अधीन *इक्ता* व्यवस्था की आधारभूत विशेषताओं को जान सकेंगे,
- चौदहवीं शताब्दी के दौरान *इक्ता* व्यवस्था में आए परिवर्तनों पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- *जागीरदारी* व्यवस्था की कार्यपद्धति और मुख्य विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे, और
- *जागीरों* के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

सल्तनत की सीमाओं के विस्तार और सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया 13वीं और 14वीं शताब्दी तक जारी रही। इसमें विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के नियंत्रण के तरीके अपनाए गए: वह क्षेत्र जो सीधे प्रशासनिक नियंत्रण में रखे गए, तथा वह जो भेंट (tribute) देते थे और अर्द्ध-स्वतंत्र स्थिति में रहे। सल्तनत के विस्तार और केन्द्र से अधिक दूर स्थित क्षेत्रों ने विभिन्न प्रकार के नियंत्रणों को दिशा दी। अपनी स्थापना के प्रारंभिक दौर और आगे के काल में भी सल्तनत की सर्वाधिक गंभीर समस्या जीते हुए प्रदेशों को संघटित करने की थी। तुर्क अपने साथ *इक्ता* नामक प्रशासनिक

*प्रो. अनिरुद्ध रे, डिपार्टमेंट ऑफ हिस्ट्री एंड कल्चर, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, कोलकाता;
प्रो. शीरीन मूसवी, सेंटर ऑफ एडवांस्ड स्टडीज़ इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़ और डॉ. किरण दत्तार, जानकी देवी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
यह इकाई हमारे पूर्ववर्ती पाठ्यक्रम ई. एच. आई.-03: भारत: 8वीं शताब्दी से मध्य 15वीं
शताब्दी तक, खंड 5, इकाई 16-17, खंड 6, इकाई 19 और ई.एच.आई.-04: भारत: 16वीं
शताब्दी से मध्य 18वीं शताब्दी तक, खंड 4, इकाई 15 से ली गई है।

व्यवस्था लाए जिसने काफी हद तक केंद्रीकरण में सहायता की। जब अधिक केंद्रीकरण की चेष्टा की गई तो *इक्ता* व्यवस्था के संयोजन में कई परिवर्तन आए।

मुगलों के अधीन मुगल शासक वर्ग को मुख्यतः वेतन *जागीर* के रूप में दिया जाता था। मात्र औरंगजेब के शासनकाल में 924 करोड़ *दाम जमादामी* (अनुमानित राजस्व) में से 724 करोड़ धनराशि *पैबाकी* (वह भूमि जो *जागीर* आवंटन के लिए आरक्षित हो; लेकिन उसे अभी तक आवंटित नहीं किया गया हो) मद में आरक्षित थी। इस प्रकार आवंटित *जागीरें* (भूमि; संपूर्ण *परगना* या उसका एक हिस्सा) कुलीन/*मनसबदार* के *तलब* योग्य वेतन के बराबर होता था। अतः यह अत्यावश्यक था कि *जमा* (अनुमानित राजस्व) और *हासिल* (वसूल किया गया वास्तविक राजस्व) में *तलब* किये गये वेतन के अनुसार आवंटित *जागीर* की *जमा* और *हासिल* में संतुलन हो। लेकिन, आप पायेंगे कि ऐसा, हमेशा नहीं था, इसीलिए साम्राज्य को 'संकट' का सामना करना पड़ा और मुगल बादशाहों को *जागीर* व्यवस्था की कार्यप्रणाली में परिवर्तन लाने पड़े।

9.2 *इक्ता* व्यवस्था

नए शासकों ने *इक्ता* व्यवस्था कायम की, जिसमें राजनैतिक संरचना की एकता को बिना हानि पहुंचाए, राजस्व संग्रह और वितरण दोनों कार्य सम्मिलित किए गए। *इक्ता* एक भूमि अनुदान था एवं उसका प्राप्तकर्ता *मुक्ती* या *वली* कहलाता था।

9.2.1 *इक्ता* क्या थे?

तेरहवीं शताब्दी की प्रारंभिक तुर्की विजयों ने अनेक छोटे स्थानीय राजाओं का अंत कर दिया (समकालीन लेखक इन छोटे राजाओं को *राय* अथवा *राना* कहते हैं)। अपने राज्य के सुदृढीकरण के लिए तुर्की शासकों ने अपने *अमीरों* को नकद वेतन के स्थान पर राजस्व अधिकार (*इक्ता*; राजस्व भू-अनुदान) का आवंटन किया। जिन व्यक्तियों को यह अधिकार दिया गया उन्हें *मुक्ती* या *वली* कहा जाता था। वे अपने *इक्ता* से कर वसूल करके अपने सैनिकों को वेतन देते थे, और स्वयं अपने खर्च के लिए एक निश्चित राशि ले लेते थे। बचे हुए अतिरिक्त राजस्व (*फवाजिल*) को केन्द्रीय सरकार को भेज देते थे। *इक्ता* एक अरबी शब्द है और प्रारंभिक इस्लामी राज्यों में यह व्यवस्था अपनाई गई थी। राज्य की सेवा करने के पुरस्कार के रूप में यह *इक्ते* दिए जाते थे। खिलाफत के प्रशासन में यह प्रथा धन की व्यवस्था करने और असैनिक तथा सैनिक अधिकारियों को वेतन देने के लिए प्रचलित थी। *इक्ता* के अनुदान का अर्थ भूमि पर अधिकार देना नहीं था। यह अनुदान वंशानुगत भी नहीं था। परन्तु फिरोज़ तुगलक के काल में *इक्ता*-धारियों ने वंशानुगत अधिकार अर्जित कर लिए थे। यह राजस्व-अनुदान स्थानांतरणीय भी थे। *इक्ता*-धारकों का तीन या चार वर्ष के अंतराल पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरण किया जाता था। अतः *इक्ता* को सामंती मध्यकालीन यूरोप में प्रचलित फीफ (fief) के समान नहीं माना जा सकता क्योंकि यूरोप की यह फीफ व्यवस्था वंशानुगत थी और स्थानांतरणीय नहीं थी। यह *इक्ता* अनुदान काफी बड़े भी हो सकते थे (एक पूरा प्रांत या उसका भाग) और छोटे भी। *अमीरों* या कुलीनों को दिए जाने वाला राजस्व-अनुदान (*इक्ता*) में *इक्ता*-धारियों को राजस्व वसूलने के अतिरिक्त सैनिक और कानून तथा व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी निभाना होता था। इस प्रकार यह *मुक्ती* या *वली* (जिसे *इक्ता* दिया जाता था) प्रांतीय प्रशासन का प्रमुख होता था। उसे पैदल और घुड़सवारों से युक्त एक सेना रखनी होती थी। *इक्ता* व्यवस्था की आदर्श परिभाषा सेल्जुक राज्यवेत्ता निज़ाम-उल मुल्क तूसी द्वारा दी गई है:

उन्हें (*मुक्ती*) यह समझना चाहिए कि प्रजा (किसानों) पर उनका अधिकार केवल शान्तिपूर्ण तरीके से उचित धन (भूमि कर) अथवा प्राधिकार (*माल-ए हक*) वसूल करने का है... प्रजा के जीवन, सम्पत्ति और परिवार को कोई हानि नहीं पहुँचाना चाहिए, *मुक्ती* को उन पर कोई ऐसा अधिकार नहीं है, अगर प्रजा सुल्तान से सीधे कोई आवेदन या प्रार्थना करना चाहती है तो *मुक्ती* को उन्हें रोकना नहीं चाहिए। जो *मुक्ती* इन नियमों को उल्लंघन करे उसे बर्खास्त और दण्डित करना चाहिए... *मुक्ती* और *वली* पर उसी प्रकार (बहुत से) नियंत्रक है जैसे कि शासक अन्य *मुक्तियों* पर नियंत्रण रखता है।... तीन या चार वर्ष बाद *आमिल* और *मुक्ती* का स्थानांतरण कर देना चाहिए ताकि ये स्थानीय स्तर पर अधिक शक्तिशाली न हो जाएँ।

मुक्ती के अधिकारों के विषय में निज़ाम-उल मुल्क तूसी के *सियासत नामा* में किया गया वर्णन। इसके अंग्रेजी प्रारूप के लिए देखें ए.बी.एम. हबीबुल्लाह, *द फाउंडेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया*, इलाहाबाद, 1976, पृ. 209-210.

इस प्रकार तूसी की परिभाषा के अनुसार इक्ता एक प्रकार का राजस्व संबंधी कार्यभार था, जो मुक्ती को सुल्तान की इच्छानुसार प्राप्त होता था। मुक्ती सुल्तान को देय भूमि कर और अन्य करों को उचित ढंग से प्राप्त करने का अधिकारी था, लेकिन उसका किसानों के लिए कार्य करने वालों, स्त्रियों तथा बच्चों एवं उनकी अन्य जायदाद पर कोई हक नहीं था। मुक्ती की सुल्तान के प्रति कुछ जिम्मेदारियाँ थीं, जिनमें प्रमुख सैन्य दलों का अनुरक्षण करना एवं आवश्यकता पड़ने पर उन्हें सुल्तान के लिए हाज़िर करना था। इक्ता एक स्थानांतरणीय कार्यभार था और इक्ताओं के स्थानांतरण की प्रथा प्रचलन में थी।

ऐसा कहा जाता है कि इल्तुतमिश (1210-36) द्वारा सुल्तान की फौज (हश्म-ए कल्ब) के सैनिकों को वेतन की जगह दोआब प्रदेश में “छोटे इक्ता” प्रदान किए गए। बलबन (1266-86) ने उनके पुनर्ग्रहण हेतु एक उत्साहहीन असफल प्रयास किया। वह अलाउद्दीन खलजी (1296-1316) ही था जिसने सैनिकों को नकद वेतन देने की प्रथा को दृढ़ता से स्थापित किया। इस प्रथा को पुनः फिरोज़ तुगलक द्वारा बदला गया जिसने सैनिकों को उनके वेतन के स्थान पर गांवों को प्रदान करना प्रारंभ किया। इन्हें वजह कहा जाता था और उनके स्वामियों को वजहदार। ये आवंटन न केवल स्थायी बल्कि वंशानुगत प्रकृति के होते थे।

9.2.2 इक्ता व्यवस्था का संचालन

सल्तनत की स्थापना के प्रारंभिक वर्षों में न तो इन आवंटनों की राजस्व आय ज्ञात थी न ही अधिन्यासी के सैन्यदल का आकार निश्चित था। तथापि, बलबन (1266-86) द्वारा कतिपय संशोधन और केन्द्रीय नियंत्रण की दिशा में कुछ प्रयास किए गए, जब उसने प्रत्येक मुक्ती के साथ एक ख्वाजा (लेखाकर) की नियुक्ति की। इससे यह अर्थ निकाला जा सकता है कि सल्तनत इक्ता की वास्तविक आय और मुक्ती के व्यय को आंकने का प्रयास कर रही थी।

इक्ता प्रशासन में प्रभावी परिवर्तन अलाउद्दीन खलजी के काल में हुआ। केन्द्रीय वित्त विभाग (दीवान-ए विज़ारत) ने संभवतः प्रत्येक इक्ता द्वारा होने वाली अनुमानित राजस्व आय का आकलन किया। लेखा-परीक्षण सख्त होता था, दंड कठोर थे, तबादले बार-बार होते थे और कई बहानों के आधार पर इक्ता की अनुमानित राजस्व आय में अक्सर वृद्धि (तौफ़ीर) की जाती थी।

गियासुद्दीन तुगलक (1320-25) ने कुछ उदार नीति अपनाई। केन्द्रीय वित्त मंत्रालय द्वारा अनुमानित राजस्व आय में वृद्धि, एक वर्ष के लिए $\frac{1}{10}$ वां या $\frac{1}{11}$ वां भाग से अधिक नहीं हो सकती थी। मुक्तियों को अपने स्वीकृत वेतनों के अतिरिक्त $\frac{1}{10}$ वें से $\frac{1}{20}$ वें भाग तक की आय अपने पास रखने की इजाजत दी गई।

मुहम्मद तुगलक (1325-51) के काल में केन्द्रीय हस्तक्षेप अपने चरम बिंदु पर पहुंच गया। कई मामलों में एक ही क्षेत्र के लिए एक वली और एक अमीर की नियुक्ति की गई। वली का कार्य राजस्व संग्रह कर, उसमें से अपने वेतन को रखकर शेष को राजकोष भेजना होता था। अमीर अथवा सेनानायक का राजस्व वसूली से कोई संबंध नहीं था और वह अपना तथा अपने अधीन सैनिकों का वेतन संभवतः स्थानीय कोष से प्राप्त करता था। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में इक्ता-धारियों को राजकोष से नकद भुगतान किया जाता था। इससे सेनानायकों में असंतोष फैला और मुहम्मद तुगलक के लिए राजनैतिक समस्याएँ उत्पन्न हुईं। फिरोज़ तुगलक ने इसमें कुछ रियायत देने का निश्चय किया। उसने सरदारों के नकद वेतनों में वृद्धि की तथा राजस्व (महसूल) का नवीन आकलन तैयार किया, जो जमा कहलाया।

फिरोज़ तुगलक के उत्तराधिकारियों द्वारा केन्द्रीय नियंत्रण को पुनः स्थापित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। लोदी शासकों (1451-1526) के काल में प्रशासनिक और राजस्व कार्यभारों को संयुक्त कर दिया गया तथा उन्हें इक्ता नहीं बल्कि सरकार और परगना कहा जाता था। सिकन्दर लोदी (1489-1517) के शासनकाल में एक प्रकार की उप-आवंटन की व्यवस्था प्रचलित थी। मुख्य अधिन्यासी (इक्ता-धारी) अपने अधिन्यास (इक्ता) के कुछ भागों को अपने अधीनस्थों को हस्तांतरित करते थे, जो बाद में अपने सैनिकों को आवंटन करते थे।

बोध प्रश्न-1

1) आप *इक्ता* को किस प्रकार परिभाषित करेंगे?

.....

.....

.....

2) मुहम्मद तुगलक द्वारा *इक्ता* व्यवस्था में क्या-क्या परिवर्तन किए गए?

.....

.....

.....

3) सही वाक्य के आगे (✓) और गलत वाक्य के आगे (×) चिह्न लगाइए:

अ) अलाउद्दीन खलजी ने *मुक्तियों* को *इक्ताओं* द्वारा प्राप्त अतिरिक्त आय अपने पास रखने की अनुमति प्रदान की। ()

ब) गियासुद्दीन तुगलक द्वारा ठेके पर राजस्व वसूल करने वालों को *इक्ता* प्रदान किए गए। ()

स) फिरोज़ तुगलक के अधीन *जमा* का अर्थ अनुमानित राजस्व आय से था। ()

9.2.3 *इक्ता* और शासक वर्ग में संसाधनों का वितरण

सल्तनत की आय का प्रमुख साधन था भूमिकर। जिस भूमि की आय सुल्तान के लिए सुरक्षित रहती थी, उसे *खालिसा* कहा जाता था। *इक्ता* वह भू-भाग था, जिसकी आय अमीरों को अनुदान में दी जाती थी *मुक्ती* अथवा *इक्ता*-धारकों को अपने क्षेत्र से भू-राजस्व जमा करना होता था और वहां कानून व्यवस्था बनाए रखनी होती थी। साथ ही साथ, आवश्यकता पड़ने पर इन लोगों को सुल्तान के लिए सैनिक सहायता की व्यवस्था भी करनी होती थी।

यह राजस्व या भूमि अनुदान स्थानांतरणीय थे और वंशानुगत नहीं होते थे। वास्तव में, *इक्ता* व्यवस्था द्वारा ही सुल्तान अमीरों पर अपना नियंत्रण स्थापित करता था। *मुक्ती* अपने क्षेत्र के किसानों से भू-राजस्व वसूल करने के पश्चात् उसमें से स्वयं अपना और अपने सैनिकों का वेतन ले लेता था। अतिरिक्त या बचे हुए धन (*फवाज़िल*) को *दीवान-ए विज़ारत* में भेजना केंद्रीकरण का द्योतक था। *मुक्ती* को अपनी आय और व्यय का विवरण भी केन्द्रीय कोषागार को भेजना होता था। धोखाधड़ी रोकने के लिए कठोर *लेखा-परीक्षण* किया जाता था।

अलाउद्दीन खलजी ने अपने अमीरों पर नियंत्रण रखने के लिए कई कदम उठाए। *बरीदों* (गुप्तचर अधिकारी) की नियमित रिपोर्ट द्वारा सुल्तान को अमीरों की गतिविधियों की सूचना प्राप्त होती रहती थी। उनके आपसी *मेल-मिलाप* पर भी नजर रखी जाती थी। अमीरों और उनके परिवारों के बीच आपसी वैवाहिक संबंध स्थापित करने के लिए भी सुल्तान की अनुमति लेना आवश्यक था। राज्य के इन उपायों को बार-बार होने वाले विद्रोहों की पृष्ठभूमि में देखना होगा। अपने-अपने क्षेत्रों के संसाधनों का दुरुपयोग करके *मुक्ती* विद्रोह करते थे या सिंहासन पर अधिकार करने की चेष्टा करते थे। इसी कारण से *इक्ताओं* का स्थानांतरण भी युक्तिसंगत माना जा सकता है। मुहम्मद तुगलक के काल में (1325-1351) अमीरों को तो नकद वेतन के बदले में *इक्ता* दिया जाता था, परन्तु पूर्व व्यवस्था के विपरीत उनके सैनिकों के वेतन का वितरण कोषागार से नकद धन के रूप में किया जाता था। यह नई वित्तीय व्यवस्था और *इक्ता* अनुदानों पर बढ़ा हुआ नियंत्रण ही संभवतः सुल्तान और अमीरों के बीच संघर्ष का कारण बना क्योंकि इस नई व्यवस्था के कारण अमीरों को *इक्ता* से होने वाले अनेकों लाभों से हाथ धोना पड़ा। परन्तु फिरोज़ तुगलक के काल में राज्य की नीति में बदलाव आया और *इक्ता* पर केंद्रीय नियंत्रण में ढील दी गई। यहाँ तक कि फिरोज़ ने *इक्ता*-धारकों की मृत्यु के बाद उनके पुत्रों और वंशजों को *इक्ता* देने की परम्परा आरंभ की। तुलनात्मक दृष्टि से फिरोज़ तुगलक के लम्बे शासन काल में बहुत कम विद्रोह हुए, परन्तु इसी काल में राज्य का विकेंद्रीकरण और बिखराव भी शुरू हुआ। लोदी वंश (1451-1526) के काल तक *इक्ता*-धारकों (इन्हें अब *वजहदार* कहा जाता था) का स्थानांतरण करने की प्रथा समाप्त हो गई।

1) इक्ता पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

2) वली अथवा मुक्ती के क्या कार्य थे ?

.....

.....

.....

3) चौदहवीं शताब्दी में मुक्ती की शक्तियों को नियंत्रित करने के लिए क्या कदम उठाए गये?

.....

.....

.....

4) निम्नलिखित वक्तव्यों के समक्ष सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाइए:

- क) i) इक्ता वंशानुगत अनुदान थे। ()
- ii) इक्ता अमीरों की व्यक्तिगत सम्पत्ति होते थे। ()
- iii) सामान्यतः इक्ता स्थानांतरणीय राजस्व अनुदान होते थे। ()
- iv) मुक्ती सुल्तान के व्यक्तिगत अंगरक्षक होते थे। ()
- v) मुक्ती धार्मिक शिक्षा देते थे। ()
- vi) मुक्ती प्रांतीय गवर्नर होते थे, जिन्हें इक्ता अनुदान दिए जाते थे। ()
- ख) फवाज़िल
- i) अमीरों को दिया जाने वाला अतिरिक्त धन था। ()
- ii) वह अतिरिक्त आय थी, जो इक्ता-धारकों द्वारा राजकीय खज़ाने में जमा की जाती थी। ()
- iii) नकद वेतन के स्थान पर दिया जाने वाला राजस्व अनुदान था। ()

9.3 जागीर व्यवस्था

जैसा कि हमने देखा दिल्ली सल्तनत में प्रदान किए गए राजस्व आवंटन को इक्ता और इसके प्राप्तकर्ता को इक्तादार के नाम से जाना जाता था। कृषकों से अधिशेष वसूलने और कुलीनों के बीच इसे वितरित करने के लिए यह व्यवस्था बनाई गई थी। इसके अंतर्गत प्राप्तकर्ता को अपने क्षेत्र के प्रशासन की भी देखरेख करनी पड़ती थी। मुगल सम्राटों ने भी यही व्यवस्था अपनाई। नगद वेतन के स्थान पर ये भू-राजस्व आवंटन प्रदान किये जाते थे। आमतौर पर आवंटित क्षेत्र को जागीर और इसके प्राप्तकर्ता को जागीरदार कहा जाता था। कभी-कभी इक्ता/इक्तादार और तुयूल/तुयूलदार जैसी पदावलियों का भी उपयोग किया जाता था। लेकिन इन पदावलियों का प्रयोग काफी कम किया जाता था। यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि जागीर व्यवस्था में भूमि का आवंटन नहीं होता था, बल्कि भूमि/क्षेत्र से प्राप्त आय/राजस्व जागीरदारों को दी जाती थी। समयानुसार इस व्यवस्था का विकास हुआ और पूरी तरह स्थापित होने के पहले इसमें कई परिवर्तन किये गये। हालांकि आधारभूत ढांचा अकबर के शासनकाल में विकसित हुआ था। आइए, पहले हम जागीर व्यवस्था के आरंभिक रूप की चर्चा करें।

9.3.1 आरंभिक चरण

अपनी जीत के बाद बाबर ने भूतपूर्व अफगान सरदारों को पुनः स्थापित किया तथा जीते गए क्षेत्र का लगभग एक तिहाई से ज्यादा हिस्सा उन्हें आवंटित किया। इस प्रकार के कार्यभार को

वजह (वजह का अर्थ पुरस्कार होता है) और प्राप्तकर्ता को वजहदार के रूप में जाना गया। क्षेत्र के कुल राजस्व का एक हिस्सा वजह के रूप में आवंटित किया गया। शेष राजस्व को खालिसा का हिस्सा माना गया। ज़मींदारों को अपने ही इलाके में पुनःस्थापित किया गया पर जीते गये अन्य इलाकों में बाबर ने हाकिमों (गवर्नरों) को नियुक्त किया। कदाचित् हुमायूँ के शासनकाल में भी यह प्रथा कायम रही।

9.3.2 जागीर व्यवस्था का संगठन

अकबर के शासनकाल में सभी क्षेत्रों को मोटे तौर पर खालिसा और जागीर में विभक्त किया गया था। पहले का राजस्व राजकीय कोष को जाता था जबकि जागीरदारों को उनके पद के अनुसार नकद वेतन के बदले जागीर प्रदान की जाती थी। कुछ मनसबदारों को नकद वेतन मिलता था और उन्हें नकदी के रूप में जाना जाता था। कुछ को जागीर और नकद दोनों रूपों में भुगतान किया जाता था। राज्य का अधिकांश क्षेत्र मनसबदारों को उनके पद के अनुसार आवंटित किया जाता था। विभिन्न क्षेत्रों में अनुमानित राजस्व को जमा या जमादामी कहते थे, क्योंकि इसका दाम के रूप में आकलन होता था (एक छोटा तांबे का सिक्का, आनुपातिक तौर पर चांदी के एक रुपये का $\frac{1}{40}$ वां भाग)। जमा में भू-राजस्व, अंतर्देशीय पारगमन शुल्क, बंदरगाह सीमा शुल्क और अन्य कर जो सायर जिहात के नाम से जाने जाते थे, शामिल होते थे। वास्तविक राजस्व वसूली के लिए राजस्व अधिकारी हासिल शब्द का इस्तेमाल करते थे। जमा और हासिल दो शब्दों को आप ठीक तरह से समझ लें क्योंकि इसका बार-बार जिक्र आया। राजस्व अधिकारी पैबाकी नामक एक अन्य शब्द का भी इस्तेमाल करते थे। यह उन इलाकों के लिए प्रयुक्त किया जाता था जिन्हें आवंटन के लिए सुरक्षित रखा जाता था, जब वह किसी मनसबदार को प्रदान नहीं किये जाते थे, उन्हें पैबाकी कहा जाता था।

अकबर के शासनकाल के 31वें वर्ष में दिल्ली, अवध और इलाहाबाद में खालिसा की जमा कुल राजस्व का 5 प्रतिशत थी। जहांगीर के शासनकाल में कुल क्षेत्र का $\frac{9}{10}$ हिस्सा जागीर के रूप में आवंटित था और केवल $\frac{1}{10}$ खालिसा के लिए उपलब्ध था। जागीर और खालिसा का अनुपात हमेशा बदलता रहा। शाहजहां के शासनकाल में यह बढ़कर $\frac{9}{11}$ हो गया और उसके शासनकाल के बीसवें वर्ष में यह लगभग $\frac{1}{7}$ वां हिस्सा था। यही प्रवृत्ति आगे के शासनकाल में भी कायम रही, औरंगजेब के शासनकाल के दसवें वर्ष में खालिसा की जमा (अनुमानित आय) कुल राजस्व का लगभग $\frac{1}{5}$ वां हिस्सा थी। हालांकि औरंगजेब के शासन काल के उत्तरार्द्ध में मनसबदारों की संख्या में वृद्धि होने से जागीरों के दावेदारों में वृद्धि के कारण खालिसा पर दबाव ज्यादा बढ़ गया। प्रशासनिक कारणों से जागीरदारों का एक जागीर से दूसरी जागीर में स्थानांतरण जागीर व्यवस्था की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता थी। इन स्थानांतरणों से जागीरदारों के स्थानीय स्तर पर अपना प्रभाव बढ़ाने और जड़ें जमाने के प्रयास पर नियंत्रण रखा जा सका। इसके साथ-साथ इस प्रथा से एक घाटा यह हुआ कि अपने इलाके के विकास के लिए जागीरदार कोई दीर्घकालीन योजना बनाने में रुचि नहीं रखते थे। कम से कम समय में ज्यादा से ज्यादा राजस्व वसूल करना ही उनका उद्देश्य रह गया था।

9.3.3 जागीरों के विभिन्न प्रकार

आमतौर पर चार प्रकार के राजस्व आवंटन किए जाते थे:

- क) वेतन के रूप में दी गयी जागीर को जागीर-ए तनखाह के रूप में जाना जाता था।
- ख) किसी व्यक्ति को दी गयी सशर्त जागीर को मशरूत जागीर कहा जाता था।
- ग) पद और कार्य से रहित जागीरों को इनाम जागीर कहा जाता था, और
- घ) ज़मींदारों और स्वायत्त शासकों को जब उनके अपने क्षेत्र जागीर के रूप में दिए जाते थे तो उनको वतन जागीर कहते थे। जहांगीर के शासनकाल में मुसलमान कुलीनों को वतन जागीर से मिलती-जुलती जागीरें दी गयीं, इन्हें अल-तमगा के नाम से जाना जाता था।

तनखाह जागीर का हर तीन-चार साल पर स्थानांतरण होता था। वतन जागीर आनुवंशिक और अस्थानांतरणीय होती थी। कभी-कभी वतन जागीर को कुछ समय के लिए खालिसा में भी परिवर्तित किया जा सकता था। 1679 में औरंगजेब ने जोधपुर के मामले में ऐसा ही किया था।

जब किसी ज़मींदार या स्थानीय सरदार को मनसबदार बनाया जाता था तो उसे वतन जागीर के अतिरिक्त तनखाह जागीर भी दी जाती थी। यह उस स्थिति में होता था जब उसका वेतन उसकी वतन जागीर की आय से अधिक होता था। महाराजा जसवंत सिंह को मारवाड़ में वतन जागीर और हिसार में जागीर-ए तनखाह प्रदान की गई थी।

9.3.4 जागीरों का प्रबंधन

जागीर को राजकीय नियमों के अनुरूप केवल प्राधिकृत राजस्व (माल वाजिब) वसूलने का ही अधिकार था। वह अपने आमिल (अमलगुजारे), फोतेदार (कोषाध्यक्ष) जैसे पदाधिकारियों (कारकूनों) की नियुक्ति करता था, जो उसके लिए काम करते थे।

राजकीय पदाधिकारी जागीरदारों पर नजर रखा करते थे। सूबे के दीवान से यह आशा की जाती थी कि वह जागीरदारों के शोषण से किसानों की रक्षा करें। अकबर के शासनकाल के बीसवें वर्ष से प्रत्येक प्रांत में अमीन नामक अधिकारी की नियुक्ति की गयी। उससे यह अपेक्षा की जाती थी कि वह इस पर नजर रखे कि जागीरदार नियमों के अनुरूप राजस्व वसूल करें, संकट की स्थिति में अक्सर फौजदार राजस्व वसूल करने में जागीरदारों की मदद करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि औरंगजेब के शासनकाल में बड़े जागीरदारों को फौजदारी अधिकार भी सौंप दिए गए थे।

बोध प्रश्न-3

- 1) जागीरों के विभिन्न प्रकारों में से प्रत्येक पर दो पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

- 2) जागीरदारों का स्थानांतरण क्यों किया जाता था?

.....

.....

.....

.....

9.4 सारांश

हमने इस इकाई में अध्ययन किया कि किस प्रकार एक विशाल सेना रखने की आवश्यकता तथा प्रशासनिक तंत्र रखने की जरूरत ने इक्ता तथा जागीर जैसी कई संस्थाओं को निश्चित रूप प्रदान किया। इक्ता भू-राजस्व व्यवस्था के प्रबंध के लिए सारी भूमि को जागीर और खालिसा में विभक्त कर दिया गया था। खालिसा से प्राप्त राजस्व राजकीय कोष तथा इक्ता/जागीर से प्राप्त राजस्व इक्तादारों/मनसबदारों को प्राप्त होता था। इक्तादारों/मनसबदारों को इक्ता/जागीरों के आवंटन द्वारा भुगतान किया जाता था। एक संस्था के रूप में इक्ता/जागीर का उपयोग किसानों से अधिशेष वसूल करने के लिए किया गया। इसके साथ-साथ इस व्यवस्था से कुलीन शासकीय वर्ग के बीच राजस्व स्रोतों का बंटवारा भी किया गया। चार प्रकार की जागीरों में वतन जागीर इस दृष्टि से काफी प्रभावी सिद्ध हुई कि इसके माध्यम से भारतीय राजाओं को मुगल शासकीय वर्ग में सम्मिलित किया जा सका।

9.5 शब्दावली

अमीर	अधिकारी
फवाजिल	अतिरिक्त राजस्व
हासिल	वास्तविक राजस्व
हश्म-ए कल्ब	केन्द्रीय/शाही घुड़सवार सेना

9.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

- 1) देखें उप-भाग 9.2.1
- 2) देखें उप-भाग 9.2.2
- 3) अ) × ब) × स) ✓

बोध प्रश्न-2

- 1) देखें उप-भाग 9.2.1, 9.2.2, 9.2.3
- 2) देखें उप-भाग 9.2.1, 9.2.2, 9.2.3
- 3) देखें उप-भाग 9.2.3
- 4) (a) i) × ii) × iii) ✓ iv) × v) × vi) ✓
(a) i) × ii) ✓ iii) ×

बोध प्रश्न-3

- 1) देखें उप-भाग 9.3.3 जहाँ चार प्रकार की जागीरों पर चर्चा की गई है
- 2) जागीरदारों के पद और वेतनों को समायोजित करने के लिए इनका स्थानांतरण किया जाता था। इसके अलावा इन्हें इसके जरिए अपने क्षेत्रों में जड़ जमाने से भी रोका जाता था। देखें उप-भाग 9.3.2

9.7 संदर्भ ग्रंथ

- अली, अतहर, (1968) *मुगल नोबिलिटी अंडर औरंगजेब* (बॉम्बे: एशिया पब्लिकशिंग हाउस).
- डे, यू. एन., (1970) *मुगल गवर्मेंट, 1556-1707* (नई दिल्ली: कुमार ब्रदर्स).
- हबीब, मोहम्मद और के. ए. निज़ामी, (1982) *कॉम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, भाग V (दिल्ली: पीपल्स पब्लिशिंग हाउस).
- हसन, इब्न, (1936) *सेंट्रल स्टूक्चर ऑफ द मुगल एम्पायर* (ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).
- रे, अनिरुद्ध, (1984) *सम आस्पैक्ट्स ऑफ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन* (कलकता: कल्याणी पब्लिशर्स).
- रेचौधरी, तपन एवं इरफान तबीब, (1982) *द न्यू कैम्ब्रिज इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, भाग I (नई दिल्ली: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).
- सरन, पी., (1941) *द प्रॉविंशियल एडमिनिस्ट्रेशन अंडर द मुगल्स {1526-1658}* (इलाहाबाद: किताबिस्तान).
- त्रिपाठी, आर. पी., (1985) *राइज एंड फाल ऑफ द मुगल एम्पायर* (इलाहाबाद: सेन्ट्रल बुक डिपो).

9.8 शैक्षणिक वीडियो

जागीरदारी सिस्टम पार्ट-I

<https://www.youtube.com/watch?v=Gggszz3I4bY>

जागीरदारी सिस्टम पार्ट-II

<https://www.youtube.com/watch?v=AhqLVUGSsUY>